गृहिणी

सच्ची गृहलक्ष्मी होने के लिये जिन गुणों का
रहना ज़रूरी है, स्त्री के साथ बात चीत
करने के बहाने स्वामी का उसी
विषय पर उपदेश ।

गिरिजाकुमार घोष

प्रकाशक
पं० सुदर्शनाचार्य, बी० ए०, 'गृहलक्ष्मी'-कार्यालय,
कर्नेलगंज–प्रयाग ।
१६१०

[मूल्य ॥।)

पं० सुदर्शनाचार्य्य, बी० ए० के प्रबन्ध से
'सुदर्शन' प्रेस, प्रयाग, में मुद्रित
सन् १९१० ई०।

पुस्तक मिलने का पता—
मैनेजर, 'गृहलक्ष्मी' कार्य्यालय,
प्रयाग।

भूमिका

हिन्दी भाषा में पुरुषों के लिये साहित्य का मैदान तैयार करने का काम कुछ कुछ मेरे ऊपर भी पड़ चुका है। हिन्दी के सब रसिक लगभग इस बात को जानते हैं कि 'सरस्वती' नाम की मासिक पत्रिका के संचालन का भार उसकी बाल्यावस्था में मेरे ही ऊपर सौंपा गया था। जब पहले पहल सरस्वती प्रकाशित की गई, उस समय हिन्दी के लेखक और पाठक दोनों की बहुत कमी थी। उस समय अंग्रेज़ी पढ़े लिखे विद्वान मातृभाषा से सर्वथा नहीं तो बहुत कुछ घृणा किया करते थे। परन्तु सात वर्ष के लगातार परिश्रम से मुझको जान पड़ा कि ऋतु बदलने लगी, हिन्दी भाषा की सेवा के लिये भी वीर विद्वानों ने कमर कस ली; जिस मैदान में पहले इने गिने पुराने दस पाँच नामी योद्धा देख पड़ते थे, आज कल उसी मैदान में उन पुराने वीरवरों का साथ देने के लिये अनेक युवा पुरुष सावधान होकर खड़े हो गए हैं। अब वह शुभ अवसर आ गया है जब माई के लाल माता से द्वेष नहीं रखते, अंग्रेज़ी पढ़ कर भी मातृभाषा की सेवा करने में उनको अब लज्जा नहीं होती। इतना ही नहीं, अब वह अवसर आ गया है जब विद्वान पुरुष अपनी सहधर्मिणी गृहलक्ष्मियों को संसार के भीषण युद्ध के लिये कच्ची पाकर निराश होकर लम्बी साँस भर रहे हैं कि हाय इन मूर्ख नारियों ही के साथ हमको जीवन बिताना है। इसी लिये, अपने जीवन की सहचरियों को अपने योग्य बनाने के अर्थ,

सब हिन्दी-भाषियोँ के मन मेँ स्त्री-शिक्षा की लालसा भी अब कुछ कुछ जगने लगी है। और इस लालसा को पूरी करने के उद्देश्य से अनेक ग्रन्थ और कई मासिक पुस्तकेँ स्त्रियोँ के पढ़ने के लिये प्रकाशित होने लगी हैँ। परन्तु जैसे मैँ ने कुछ वर्ष पहले पुरुषोँ के लिये देखा था, अन्तःपुर मेँ घुस कर कुशिक्षा देनेवाली मिशनरी नारियोँ की नाईं इस समय बहुत सी अनुचित चर्चाओँ से भरे हुए साहित्य ही की सृष्टि हो रही है। पुरुष तो पश्चिमी भावापन्न हो ही गए हैँ, अब इस शिक्षा की प्रबल धारा मेँ हिन्दू स्त्री का पवित्र कोमल भाव जो अब तक बहुत कुछ बचा हुआ है, वह भी बह जाना चाहता है। हम सबोँ को बड़ी सावधानी से काम करना पड़ेगा। अपनी गृहलक्ष्मियोँ की कोमलता और पवित्रता मेँ धब्बा न लगने पावे, ऐसी ही पुस्तकेँ उनकी शिक्षा के लिये बनानी चाहिएँ। और इसीका दृष्टान्त दिखाने के लिये मैँ ने आज स्त्री-साहित्य मेँ भी हाथ डालने का साहस किया है। मेरा काम कहाँ तक सफल हुआ है, विद्वान लोग 'गृहिणी' को आद्योपान्त पढ़ कर बता सकेँगे। इस विषय मेँ मुझे इतना ही कहना है कि हिन्दी का साहित्य अभी बाल्यावस्था मेँ है, इसलिये हिन्दी की बहिन बङ्गभाषा मेँ इसी विषय पर जो जो पुस्तकेँ अच्छी गिनी जाती हैँ उनकी सहायता लेना हिन्दी वालोँ के लिये बुरा न होगा। मैँ ने भी श्रीयुत गिरिजाप्रसन्न राय चौधरी, बी० ए०, बी० एल०, महाशय की रची हुई 'गृहलक्ष्मी' नाम की पुस्तक के पहले भाग की सहायता से 'गृहिणी' को हिन्दी पढ़नेवाली गृहिणियोँ के उपयोगी बनाया

है। आशा है कि मेरा श्रम विफल न होगा और गृहिणी को हर पढ़ी लिखी गृहिणी के गृह में आदर मिलेगा।

इस ढंग की पुस्तक हिन्दी के लिये बिलकुल नई है। और मैं भी इसको पूरी तरह से हिन्दी लक्ष्मियों के उपयोगी बनाने के लिये योग्यता नहीं रखता। कारण इसका यह है कि यद्यपि हिन्दी भाषा से मुझको विशेष प्रीति है, तब भी अन्तःपुर-वासिनियों के रहन सहन और इस देश की सामाजिक रीतियों से मैं सम्पूर्ण अभिज्ञ नहीं हूँ। पुस्तक के छप जाने पर एक मित्र ने "विवाह" शीर्षक अध्याय को पढ़ कर मुझसे कहा कि वर कन्या को उनके भावी कुटुम्ब वाले विवाह के पहले स्वयं नहीं देखने जाते, वरन् यह काम नाऊ आदि के ऊपर सौंपा जाता है, और वे आकर जैसा कुछ कह देते हैं उसी पर विवाह की सब बातें पक्की हो जाती हैं। फल इसका समय समय पर महा भयङ्कर हो जाता है। इसी प्रकार की सामाजिक सब रीति नीतियों से मेरी जानकारी न रहने के कारण मुझे बड़ी शंका है कि इस पुस्तक में बहुत कुछ त्रुटियाँ रह गई होंगी, और इसी लिये विशेष विशेष और सूक्ष्म बातों को बिलकुल छोड़कर साधारण रीति पर सब विषयों की आलोचना की गई है। मुझे आशा है कि मेरे हितैषी पाठक और मित्रवर्ग जहाँ पर ऐसी त्रुटियाँ इस पुस्तक में पावें कृपा पूर्वक मुझको उनकी सूचना दे देंगे कि पुस्तक के दूसरे संस्करण में उन बातों की आलोचनाएँ भी बढ़ा दी जावें।

दूसरी एक और बात है जिसके लिये भी मुझे बड़ी भारी शंका है। स्त्रियों की भाषा पुरुषों की भाषा से कुछ निराली हुआ करती है। मुझे नहीं मालूम इस पुस्तक की भाषा सब

प्रान्तों की हिन्दी पढ़ने वाली या सुनकर समझने वाली स्त्रियों के अनुकूल हुई है या नहीं। विद्वज्जन इस विषय पर भी मेरी त्रुटि क्षमा करेंगे यही मेरी विनती है।

अन्त में मैं 'गृहलक्ष्मी' की सम्पादिका श्रीमती गोपालदेवी जी तथा सम्पादक पंडित सुदर्शनाचार्य जी, बी० ए०, को हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि आपने स्त्रियों के पढ़ने की पुस्तकें प्रकाशित करने का बड़ा भारी काम अपने ऊपर उठाया है, और बड़े बड़े नामी लेखक और विद्वानों के रहते हुए इस पुस्तक के लिखने का भार मुझ ऐसे तुच्छ मनुष्य पर सौंपा है।

प्रयाग,
विजयादशमी,
संवत् १९६७

गिरिजाकुमार घोष,
[उपनाम लाला पार्वतीनन्दन]

निवेदन

सहृदय पाठक और पाठिकाओ !

आपके अनुरोध से हमने स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाश करना जिस "गृहलक्ष्मी ग्रन्थमाला" द्वारा आरम्भ किया है उस 'ग्रन्थमाला' की 'गृहिणी' नामक यह प्रथम पुस्तक आज हर्ष पूर्वक किन्तु कुछ डरते डरते आपके सामने लेकर हम उपस्थित होते हैं। हर्ष तो इस कारण होता है कि आपके उत्साह दिलाने तथा ईश्वर की कृपा से हम इस पुस्तक के प्रकाश करने में समर्थ हुए, परन्तु भय इस बात का है कि स्त्री-शिक्षा का विषय बड़ा ही सुकुमार है और सम्भव है कि इस पुस्तक में बहुत सी त्रुटियाँ रह गई हों। इस विषय पर वास्तव में उपयोगी पुस्तक प्रकाश करना साधारण काम नहीं

है। इसी कारण हमने सर्वथा स्वतंत्र पुस्तक न लिखा कर इस पुस्तक को एक ऐसी बङ्गभाषा की पुस्तक के आधार पर लिखवाया है जिसका बङ्ग-भाषा-भाषियों ने बहुत ही आदर किया है और थोड़े ही समय में उसके आठ संस्करण निकल गए।

हमारे विचार में हमारे देश की स्त्रियों के लिये पुस्तकें ऐसी होनी चाहिएँ जिनके पढ़ने से वे अपने सच्चे आदर्श को समझ सकें और वास्तव में 'गृहलक्ष्मी' पद के योग्य हों। साथ ही साथ ऐसी पुस्तकों के लिखने में इस बात का ध्यान भी रखना चाहिए कि वे हिन्दूमात्र की बहू बेटियों के लाभ की हों, किसी विशेष मत की न होने पावें, नहीं तो उनकी उपयोगिता एकदेशी हो जाती है। हमारा अनुमान है कि इस पुस्तक के लिखने में दोनो नियमों का यथाशक्ति पालन किया गया है।

हम अपने हिन्दी प्रेमी श्रीयुत् गिरिजाकुमार घोष को हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक को रच कर केवल इस ग्रंथमाला के प्रकाश करने में ही सहायता नहीं दी, वरन् हिन्दी साहित्य में भी एक रुचिकर और उपयोगी पुस्तक बढ़ाई।

हमें आशा है कि हमारे देश की बहू बेटियाँ इसको पढ़कर और इससे उत्तम शिक्षा ग्रहण कर हमारे तथा ग्रंथकार के परिश्रम को सफल करेंगी क्योंकि किसीने ठीक कहा है—
"क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते" ॥

निवेदक—
सुदर्शनाचार्य्य,
गोपालदेवी।

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
स्वामी और स्त्री	१
पढ़ना लिखना	२१
गहने कपड़े	२७
ससुराल	३४
आपस का वर्त्ताव	४८
अपनी दशा को छिपाना—छल	७३
स्वामी का परदेस जाना	८०
सतीत्व	८६
बुरे पति की चाल सुधारना	१०२
अविश्वास—मान	११३
विवाह	१२१
पराई निन्दा—डाह	१३४
विविध	१४२
सास-बहू	१५३
गृहिणी-गृहलक्ष्मी	१६८

गृहिणी

स्वामी और स्त्री

स्त्री—यह कौन सी किताब पढ़ रहे हो?

स्वामी—"नारीहितोपदेश"।

स्त्री—क्या इसमें कहानियाँ हैं? तनिक ज़ोर से ही पढ़ो।

स्वामी—सुनोगी? अच्छा, पढ़ता हूँ।

स्त्री—बहुत ज़ोर से मत पढ़ना। उस कोठरी से लोग सुन न लें।

स्वामी—क्या मैं ऐसा बेहया हूँ कि बड़े लोग सुन लेवें इतने ज़ोर से तुम्हारे पास बैठ कर किताब पढ़ूँगा!

स्त्री—नहीं, सो नहीं, पर आज कल ऐसे भी कुछ आदमी होते हैं, इसीसे मैंने कही है। पर तुम नाराज मत हो। कोई सुन पावेगा तो तुम्हारी निन्दा होगी, सो मुझ से नहीं सही जायगी—इसीसे मैंने कही है। अच्छा पढ़ो।

स्वामी—(पढ़ता है)—

"हम बड़े साहस से कह सकते हैं कि पति पत्नी का इस तरह से मिल जाना, इस तरह से दोनो का एक हो जाना पृथ्वी पर के और किसी जाति ने सोचा तक नहीं है। हिन्दुओं के विवाह से स्त्री और पुरुष की भिन्नता का नाश होकर दोनो का एका हो जाता है। विवाह के हो जाने पर

स्त्री और पुरुष मिल कर एक हो जाते हैं। पानी जैसे पानी में मिल जाता है, हवा जैसे हवा में मिल जाती है, पुरुष उसी तरह स्त्री में और स्त्री पुरुष में मिल जाती है। ये ऐसे मिल जाते हैं कि ये दोनो फिर दो नहीं रहते—एक हो जाते हैं। जिस एक के दो हो गए थे, वही फिर मिलकर दो से एक हो जाता है। स्वयम्भू ने अपनी देह के दो टुकड़े करके एक स्त्री और एक पुरुष बनाए थे, वही दो टुकड़े मिलकर फिर एक—फिर वही स्वयम्भू—बन जाते हैं। हिन्दू धर्म में स्वयम्भू के पद को पाना ही मुक्ति कहा जाता है। हिन्दू विवाह का उद्देश्य भी मुक्ति ही है।"

हैं, मेरी तरफ क्या देख रही हो—मैं जो पढ़ रहा हूँ उसे नहीं सुनती हो क्या?

स्त्री—सुन तो रही हूँ। पर कुछ समझ में नहीं आता। इसीसे तुम्हारी ओर देख रही थी। यह काहे की कहानी है?

स्वामी—कहानी नहीं, यह एक निबन्ध है।

स्त्री—निबन्ध किसे कहते हैं? इसमें कौन सी बात लिखी है?

स्वामी—हिन्दुओं के विवाह की बात लिखी है। स्वामी स्त्री का कौन होता है, और स्त्री भी स्वामी की कौन होती है, उन दोनो में कैसा नाता है, यही बात इसमें लिखी हुई है।

स्त्री—हे भगवान! यह भला कैसी बात है! 'स्वामी स्त्री का कौन होता है, और स्त्री स्वामी की कौन होती है,' भला ऐसी बात भी कहीं लिखी जाती है! यही किताब पढ़ रहे हो! मैं जानती थी कि इतने ध्यान से पढ़ रहे हैं तो न जाने कैसी

कैसी कहानी होंगी। सो यह ऐसी पोथी है! इसे पढ़ के क्या होगा ? इस बात को तो सभी जानते हैं।

स्वामी—कहो तो कौन सी बात ?

स्त्री—यही न कि स्त्री स्वामी के देह की आधी है! इसे तो छोटी छोटी लड़कियाँ तक जानती हैं।

स्वामी—(आनन्द से) ठीक कहती हो। पर कहो तो इससे मतलब क्या है ?

स्त्री—(चुप)

स्वामी—चुप क्यों हो गईं ?

स्त्री—मतलब सतलब तो मैं नहीं जानती। लोग कहा करते हैं, सोई मैंने भी सुन रक्खी है। लोग कहा करते हैं कि स्त्री और स्वामी दोनों का एक ही मन है, एक ही आत्मा है। उनमें से एक पुण्य करे चाहे पाप करे, दूसरे को भी उसका फल भोगना पड़ता है। दोनो जने एक दूसरे के पाप और पुण्य के भागी हैं। इसमें और भी कोई मतलब है सो मैं नहीं जानती।

स्वामी—तुम ठीक कहती हो। स्त्री स्वामी का आधा अङ्ग है, इसीसे स्त्री को एक नाम अर्द्धाङ्गिनी भी है। स्त्री स्वामी के पाप पुण्य की भी साझीदार है। पर बताओ तो ऐसे कहने से क्या मतलब है ? कुछ हमारी तुम्हारी देह आधी आधी काट कर जोड़ थोड़े ही दी गईं हैं। फिर आधा अङ्ग कहने से क्या मतलब है ?

स्त्री—सो मैं क्या जानूँ। तुम्हारी इस पोथी में वही बात लिखी होगी ?

स्वामी—हाँ, लिखी है। और भी बहुत सी बातें हैं। सुनोगी ?

स्त्री—सुनने को तो जी चाहता है, पर समझ में तो कुछ आता ही नहीं।

स्वामी—अच्छा, पोथी को मैं रक्खे देता हूँ। योंही तुम को समझाऊँगा। कहो तो, पृथ्वी पर हमलोग आदमी होकर क्यों जन्मे हैं ?

स्त्री—नानी जी कहा करती थीं कि पाप का फल भोगने ही के लिये मनुष्य का चोला मिलता है। जब तक पाप का अन्त नहीं हो लेता तब तक इसी तरह से बार बार जन्म लेना और मरना पड़ता है।

स्वामी—तब इस पाप के नाश करने का यत्न करना चाहिए न ?

स्त्री—भला इसमें भी कुछ सन्देह है ? बार बार गर्भ-वास का क्लेश, मरने का दुःख, इन आफ़तों का झेलना क्या कुछ सहज बात है ?

स्वामी—कौन सा काम करने से इन आफ़तों से छुट-कारा मिल सकता है ?

स्त्री—अच्छी कही ! मैं भला क्या बताऊँ ! सुना है, इसी के लिये दुनिया न जाने क्या क्या करती है—कोई जोरू, जाँता, घरबार छोड़ कर संन्यासी हो जाता है, कोई वनवास लेता है और कितने लोग घर ही में रह कर दान ध्यान, तीर्थ, व्रत, उपवास किया करते हैं। मैं और क्या बता सकती हूँ !

स्वामी—सो तो ठीक कहती हो। इस पाप के नाश करने के लिये मनुष्य अनेक उपाय किया करते हैं। पर इनमें से अच्छा कौन सा है?

स्त्री—मैं भला इसको क्या समझूँ हूँ जो मुझसे पूछ रहे हो? बड़ों से जो सुन रक्खा है उतना ही मैं जानती हूँ। पर हाँ, नानी जी कहा करती थीं कि संन्यासी कहो, चाहे ब्रह्मचारी कहो, गृहस्थ आश्रम के बराबर एक भी नहीं है। गृहस्थी में रह कर धर्म पालने से बढ़ कर दूसरा धर्म और नहीं है। गृहस्थी ही में सब तीर्थों का वास रहता है।

स्वामी—हाँ, नानी जी ने बहुत ठीक बताया था। पाप का नाश करके मुक्ति पाने के लिये साधारण लोगों को गृहस्थ आश्रम ही सब से अच्छा है। गृहस्थ धर्म के बराबर और कोई धर्म नहीं है। पर यह बड़ा ही कठिन धर्म है।

स्त्री—कठिन तो है ही। गृहस्थी कुछ सहज थोड़े ही है!

स्वामी—गृहस्थी सहज नहीं है। यह तुमने ठीक कहा। पर गृहस्थ आश्रम में घर के काम काज को छोड़ और और भी बहुत सी बातें करने की होती हैं। उन बातों को अभी रहने दो। कहो तो, गृहस्थ धर्म का जन्म कहाँ से है?

स्त्री—तुमने क्या पूछा, मैं समझी ही नहीं।

स्वामी—नहीं समझी? अच्छा, कहो तो, गृहस्थ कहते किसे हैं?

स्त्री—अरे, जिसके जोरू है, लड़का है, घर है, द्वार है, उसीका नाम गृहस्थ है न? और किसे गृहस्थ कहते हैं?

स्वामी—तो क्या मर्द ही गृहस्थ होते हैं, स्त्री गृहस्थ नहीं होती?

स्त्री—क्यों नहीं। जिसके स्वामी हैं, बाल बच्चे हैं, वही गृहस्थ है ।

स्वामी—बस, देखो, विवाह ही से गृहस्थाश्रम का जन्म है। स्वामी, स्त्री, बेटा, बेटी, ये सब विवाह ही से न हुए !

स्त्री—तो क्या इसी लिये स्त्री के मर जाने पर कहते हैं कि घर सूना हो गया ?

स्वामी—हाँ, कुछ ऐसा ही है। अब समझीं, पाप का क्षय करके मुक्ति का पाना ही हम सब के जीवन का उद्देश्य—असली मतलब—है। इस मतलब के पूरा करने के लिये गृहस्थ का धर्म बहुत अच्छा है। और यह गृहस्थ आश्रम विवाह ही से मिलता है। विवाह ही से पति पत्नी को और पत्नी पति को गृहस्थ बनाती है। गृहस्थ धर्म के पालने ही से लोक पुण्य कमा कर पाप का नाश करते हैं।

स्त्री—गृहस्थी से पाप का नाश कैसे होता है ?

स्वामी—क्या इस बात को समझ सकोगी ? गृहस्थ आश्रम में जो जो बातें करने लायक बताई गई हैं, वे सब गृहस्थ के नित्य कर्म हैं; जैसे, सन्ध्या उपासना पाँच महा-यज्ञ, अतिथि सेवा, परिवार का पालना पोषना, इत्यादि। इन सभों के करने से आदमियत—मनुष्यता—आ जाती है। इन सब कामों से आदमी की बुरी वृत्तियाँ दब जाती हैं, अच्छी आदतें उभड़ती हैं। इसीसे इसका नाम "गृहधर्म" है। गृहस्थ आश्रम अपने सुख के लिये नहीं है, भोग विलास के लिये नहीं है, संसार में नामवरी पाने के लिये नहीं है, गृहस्थ आश्रम धर्माचरण और परोपकार के लिये है।

स्त्री--मैं ने समझ लिया। संसारी धर्म भी धर्म ही है। पर असल बात तो रह ही गई। स्त्री को स्वामी का आधा अङ्ग क्यों कहते हैं, सो तो तुमने कही ही नहीं।

स्वामी—उसे भी कहता हूँ। कहो तो अब स्वामी और स्त्री में आपस का बरताव कैसा होना चाहिए।

स्त्री—दोनो आपस में प्रीति रक्खें। अपने मन में कोई बात हो उसे आपस में कह दें। एक के सुख से दूसरे को सुख हो और एक को दुख आ पड़े तो दूसरा भी दुख माने, दोनो एक दूसरे का सुख बढ़ाने में लगे रहें—

स्वामी—रहने दो, मैं और सुनना नहीं चाहता। क्या मैंने यही बात पूछी थी? बस इन्हींको तुमने अपना धर्म मान रक्खा है? विवाह का मतलब समझ लिया, स्वामी और स्त्री का कर्त्तव्य नहीं समझा? नहीं, तुमको समझाना बड़ा कठिन है।

स्त्री—अजी गुस्सा क्यों होते हो? मैं ठीक जवाब न दे सकी तो तुम ही बता दो।

स्वामी—अच्छा मैं ही कहता हूँ। सच पूछो तो स्वामी और स्त्री को गृहधर्म में एक दूसरे की सहायता करनी चाहिए; उस धर्म के पालन के लिये उत्तेजना और उत्साह देना चाहिए; और जिस रीति से एक के मन की बुरी वृत्तियाँ दब कर अच्छी वृत्तियाँ उभड़ आवें और मनुष्य मनुष्य कहाने के लायक हो जावे, दूसरा ऐसे ही काम किया करे। समझीं?

स्त्री—और मैं ने जो बात कही, वह कुछ है ही नहीं? स्वामी स्त्री से प्रेम न रक्खे, और स्त्री भी स्वामी से प्रेम न रक्खे?

स्वामी—वे आपस में प्रेम क्यों न रक्खें!

स्त्री—तो क्या यह बात कुछ है ही नहीं? आज तुमको हो क्या गया है?

स्वामी—कुछ भी नहीं। तनिक सुचित हो कर सुनो, सब बातें समझ में आ जायँगी। मैं ने जिस बात को कहा है उसी में प्रेम की बात भी आ गई। आज कल की स्त्रियों को उपन्यास पढ़ पढ़ के प्रेम का रोग सा हो गया है। प्रेम असल में कहते किसे हैं उसकी तो ख़बर तक नहीं, बस मुँह से प्रेम ही प्रेम चिल्लाया करती हैं। क्या मुँह से विना बोले और कर दिखाने से प्रेम कुछ कम हो जाता है? पुरानी स्त्रियों को तो देखो। तुम जिस प्रेम का नाम लेते साथ घबराने लगती हो, वे उसका अर्थ तक नहीं समझतीं। पर क्या इसीलिये वे तुम सभों की बराबरी में कुछ कम प्रेम किया करती थीं, और क्या उनके पति उनको कम प्यार करते थे?

स्त्री—पर तुम भी तो बड़े अचरज की बात कह रहे हो। स्वामी स्त्री के आपस के बरताव की बात हो रही थी, उसमें प्रेम की बात तुमने कही ही नहीं। उल्टे, मेरे सुध दिलाते ही तुम आग बबूला हो गए।

स्वामी—तुमसे किसने कहा कि मैं ने प्रेम न करने की बात कही है?

स्त्री—कहेगा कौन, मैंने सपना देखा है !

स्वामी—सच कहना ! अच्छा, मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, कोई स्वामी और स्त्री उसे चाहे करके देख लेवें। देखना उन दोनो में आप से आप गहरा प्रेम हो जाता है या नहीं। जीवन का इतना बड़ा जो उद्देश्य है--उसके पाने के लिये जो इतनी सहायता करता है, बताओ तो उसे बिना प्यार किए कहीं रहा जाता है ? जो दम्पती (स्त्री और पुरुष दोनो की जोड़ी को दम्पती कहते हैं—इसे याद रखना)—जो दम्पती विवाह के उद्देश्य को-असली मतलब को—पाने का यत्न करते हैं, उसके लिये भरसक कोई बात उठा नहीं रखते --उनमें प्रेम बहुत गहरा हो कर विराजा करता है। और मैं जो अच्छी वृत्तियों के बढ़ाने की बात कह रहा था, उससे तुमने क्या समझा ?

स्त्री—कुछ भी नहीं।

स्वामी—अच्छा, जो उसके भीतर भी प्रेम होवे तो ?

स्त्री—प्रेम भला वृत्ति किस तरह हो सकती है ?

स्वामी—जिस तरह से भूख, प्यास, वगैरह शरीर की वृत्तियाँ हैं, उसी तरह प्रेम भी मन की एक वृत्ति है। अन्न पानी से जिस तरह भूख प्यास बुझ जाती है, प्यार करने के पात्र को प्यार करके प्रेम भी उसी तरह शान्त हो जाता है। जिस तरह भूख, प्यास, मेँ नियम के अनुसार उचित मात्रा में अन्न जल लेने से शरीर की पुष्टि होती है, उसी तरह प्रेम के पात्र से धर्म की रीति से प्रेम रखने से मन भी पुष्ट होता है। स्त्री स्वामी के, और स्वामी स्त्री के ऐसे ही प्रेम के

पात्र हैँ, इन दोनो मेँ प्रेम आप से आप आ जाता है। ये दोनो जिस तरह दोनो के धर्म कर्म के सहायक होते हैँ, उसी तरह का अच्छी वृत्तियोँ के बढ़ाने मेँ भी सहायक हुआ करते हैँ प्रेम आदि वृत्तियोँ के पुष्ट होने के लिये गृहस्थी ही ठीक जगह है। यहीँ से पुष्ट हो कर अच्छी वृत्तियाँ संसार भर में छा जाती हैँ, तब उनकी धर्मानुसार विकाश वा बढ़ती होती है। भोग कहो विलास कहो, सुख कहो, चाहे जो कुछ कहो, धर्म ही को सब का आधार बनाना चाहिए। पति पत्नी एक दूसरे के सुख भोगने की सामग्री हैँ, बढ़ती के सहायक हैँ। धर्म का सहारा लेकर इस भोग सुख का विकाश होवे तो दम्पती को सुख भी मिलता है और धर्म भी लाभ होता है।

स्त्री—सोई कहो। तुमने तो प्रेम की बात बिलकुल दबा ही दी थी।

स्वामी—उसका कुछ प्रयोजन नहीँ था इसी लिये मैंने उसका नाम नहीँ लिया था। प्रेम की शिक्षा न दी जावे तो भी कुछ हर्ज नहीँ है। स्त्री स्वामी से प्रेम रक्खा करे, ऐसी शिक्षा देने का कुछ प्रयोजन नहीँ। परन्तु इस प्रेम को विकाशित करके संसार भर में फैलादेना चाहिए—ऐसी शिक्षा की जरूरत है। प्रेम की शिक्षा दी जावे तो बहुधा देखा जाता है कि स्त्रियाँ छोटी उमर ही से इसीको विवाह का लक्ष्य मान लेती हैँ। प्रेम प्रेम, कहती हुई अन्त मेँ उपन्यास की प्रेमवती नायिका की तरह पागल हो जाती हैँ। और किसी बात की सुध नहीँ, स्वामी मुझसे प्रेम रखता है या नहीँ बस इसीकी धुन सवार हो जाती है, इसीको वह अपने मनुष्य

जन्म पाने का लक्ष्य समझ लेती हैं। इससे उनकी बड़ी हानि होती है, और स्वामियों की भी हानि होती है। स्वामी सोचते हैं कि पत्नी को प्यार करना हीं संसार में उनका धर्म कर्म सब कुछ है, और पत्नियाँ सोचती हैं कि स्वामी का प्रेम हीं उनके लिये सब कुछ है। गृहस्थ का धर्म तो हवा में मिल जाता है, बस दोनो जने दिन रात मुहब्बत के फन्दे में फँसे रहते हैं।

स्त्री—बात इतनी चाहे न बढ़ जावे, पर कहा तुमने सचही है। इसीसे आज कल विवाह हो जाने की पीछे, वह घर में जब आती है तो उससे और किसीसे नहीं बनतीं, और कभी कभी तो सबसे अलग हो कर अपने पति ही के साथ रहने लगती है। मा बेटे तक में विगाड़ हो जाता है।

स्वामी—अब इतनी देर में मैं अपनी मेहनत को सफल समझता हूँ। अब तुमने मेरी बात समझ ली। अच्छा, अब सुनो स्त्री स्वामी की अर्द्धाङ्गिनी क्यों हुई। चाहे स्त्री हो, चाहे स्वामी ही हो, कोई भी अकेला गृहस्थी नहीं चला सकता। एक को दूसरे से सहारा जरूर लेना पड़ता है। इसीलिये गृहस्थ-धर्म के पालने में पत्नी पति की आधी होती हैं। दोनो मिलकर न चलें तो उनका कोई काम पूरा नहीं पड़ता, मानुषी जीवन का—अपने को मनुष्य कहलाने का—जो असली उद्देश्य है, वह पूरा नहीं होता; इसीलिये—अपना उद्देश्य पूरा करने के लिये—एक दूसरे का आधा बना रहता है। अब आगे और जो कुछ इस विषय पर मुझे कहना है, सो किताब पढ़ कर सुनाता हूँ। ध्यान देकर सुनो।

"संस्कृत भाषा में पत्नी का एक नाम है सहधर्म्मिणी। सहधर्म्मिणी शब्द का अर्थ यह है—'जो (पति के) साथ धर्म का पालन करती है'। पत्नी शब्द के बदले बहुत से और भी शब्द हैं—स्त्री, जाया, भार्या, अर्द्धाङ्गिनी, इत्यादि। इन शब्दों में से कई का अर्थ बहुत गहरा है, पति और पत्नी में विशेष सम्बन्ध बतलाने वाला है। दूसरी भाषाओं में भी पत्नी शब्द के इसी तरह से बहुत से प्रतिशब्द हैं। जैसे, अंग्रेज़ी में wife, better-half, इत्यादि। इन शब्दों के अर्थ पर विचार करने से जाना जाता है कि अंग्रेज़ी भाषा में इन शब्दों से एक ही अर्थ निकलता है; परन्तु संस्कृत भाषा के शब्द वैसे नहीं हैं। संस्कृत में भी अंग्रेज़ी की भाँति प्रेम बतलाने वाले प्रतिशब्दों की कमी नहीं है, परन्तु अकेले प्रेम को छोड़ कर इससे भी अच्छे अच्छे भावों को बतलाने वाले शब्द भी इस भाषा में हैं। जाया, सहधर्म्मिणी, आदि इसके दृष्टान्त हैं। ऐसे अच्छे प्रतिशब्द जगत की और किसी भाषा में हैं वा नहीं, सो हम नहीं जानते; परन्तु न रहने ही के प्रमाण बहुत हैं। हम इस बात को और भी खोल कर बताते हैं। धर्माचरण सब जातियों में है। परन्तु हिन्दुओं की भाँति सब कामों में धर्म का रहना शायद आज तक और किसी जाति ने नहीं माना है। पुराने समय की जातियों के धर्माचरण के विषय में हम बहुत कहना नहीं चाहते; आज कल जिन दो बड़ी बड़ी प्रबल जातियों से हमारा सम्बन्ध है, उन्हीं की बात कहेंगे। अंग्रेज़ जाति को देखो। क्या ये लोग धर्माचरण नहीं करते?

कौन कह सकता है ? स्वार्थ-त्यागी, परोपकारी, दीनदयालु ईसा मसीह की बात चाहे हम न कहें, अब भी ऐसे उदार प्रकृति वाले, परोपकारी प्रवीण बहुतेरे ईसाई हैं जिनके धर्माचरण को देख कर बड़े विस्मय में डूब जाना पड़ता है। इन लोगों के सामने रहते हुए, कौन मनुष्य ऐसा है जो सत्य की मर्यादा को विना तोड़े हुए कह सकता है कि ईसाइयों में धर्मात्मा हैं ही नहीं ? जो बात ईसाइयों के लिये कही गई, ठीक वही मुसलमानों के भी लिये कही जा सकती है। इन दोनो जातियों को हम अपने सामने देख रहे हैं, इसीसे इन्हीं की बात हम कह रहे हैं--इसीसे मन में आता है कि इन्हीं की भाँति दूसरी जाति वाले भी धर्माचारी होंगे।

मान लिया कि ये लोग सब ही धर्माचारी हैं, परन्तु हिन्दुओं की भाँति नहीं हैं। ईसाई और मुसलमानो के लिये कई एक निर्दिष्ट काम हैं—बस उन्हींसे इन लोगों के धर्म का सम्बन्ध है—बाकी और और कामों से उनका धार्मिक सम्बन्ध कुछ नहीं है। जैसे, मान लो—भोजन। ईसाई भोजन के साथ धर्म का कुछ सम्बन्ध रखना उचित नहीं समझते। उनके लिये भोजन शरीर के अभावों को दूर करने के लिये सुख दिलाने वाला एक काम है। वे भोजन से बस दो ही विषय माँगते हैं—शरीर की पुष्टि और जिह्वा को आनन्द। मुसलमान भी इसी तरह कई निर्दिष्ट कामों के साथ धर्म का सम्बन्ध मानते हैं। परन्तु हिन्दू ऐसा नहीं करते—वा यों कहिए कि पहले नहीं करते थे। उनके जीवन की तनिक तनिक सी बातों से लेकर बड़े बड़े, बहुत बड़े बड़े से भी

बड़े, सब तरह के काम धर्म के साथ जकड़े हुए हैं। लोग चाहे आज कल धर्म कर्म में बहुत शिथिल पड़ गए हों, पर हिन्दू शास्त्रों की ऐसी ही विधि है, यही उपदेश है, यही मतलब है। हिन्दू का हर एक काम उसी एक ही ओर दौड़ा करता है। हिन्दू के लिये ऐसा कोई भी काम नहीं है—हो ही नहीं सकता। जो धर्म के साथ सम्बन्ध नहीं रखता। दूसरी जाति वाले जिसे सुख कहते हैं, हिन्दू उसे सुख नहीं समझता। हिन्दू के सुख का विचार और संज्ञा निराली है। उसके सुख का विचार वा संज्ञा ऐसी है कि उसे पाने के लिये धर्माचरण को छोड़ और दूसरा उपाय ही नहीं है। मनुष्य सब बातों में सुख चाहता है—इसलिये हिन्दू को सब कामों में धर्मानुष्ठान का प्रयोजन पड़ता है। क्योंकि उस धर्म की लकीर के एक कण भर को भी टाल देने से हिन्दू को सुख मिलना सम्भव नहीं है। इसीसे हिन्दू के भोजन, भजन, भोग विलास, सब ही बातों में धर्म कार्य ही सब से प्रधान हुआ करता है। इसीसे हिन्दू के विवाह में दम्पती का भोग विलास, पति पत्नी के इन्द्रियों का सुख, असली लक्ष्य नहीं माना गया है, और हिन्दू पत्नी का प्रधान प्रतिशब्द "प्रणयिनी" नहीं है, "सहधर्मिणी" है।

इस "सहधर्मिणी" शब्द ही पर विचार किया जावे तो पहले दिनो के हिन्दुओं में पति और पत्नी का नाता सहज ही में समझ में आ जाता है। परन्तु बड़े खेद की बात है कि हिन्दुओं में कुछ दिनो से—असली मतलब के भूल जाने से-यह नाता नित्य ढीला पड़ता जाता है।

हिन्दू के लिये गृहस्थाश्रम धर्म पालन के लिये एक आश्रम है। यह "आश्रम" शब्द ही सांसारिक कामों के साथ धर्म के सम्बन्ध को बहुत अच्छी तरह समझा देता है। इस आश्रम के सारे काम हिन्दू लोग धर्म के उद्देश्य से करेंगे, यही शास्त्र का उपदेश है। हिन्दुओं के भोजन के पहले और पीछे जिन मन्त्रों के पढ़ने की विधि है—भोजन के समय जैसी अवस्था में रहने की आज्ञा है, उन पर तनिक ध्यान देने ही से ऊपर कही हुई बात का मतलब समझ में आ जायगा। उन मन्त्रों के यहाँ पर लिखने का प्रयोजन नहीं है। अब इतना ही कहना काफ़ी होगा कि हिन्दुओं के घर के काम काज तक धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। इस धर्माचरण में पत्नी पति की सहधर्मिणी होती है। परन्तु बड़े ही खेद की बात है कि आज कल हिन्दू पत्नियाँ इसे भूल सी गई हैं। वे गृहस्थी का काम धंधा करती हैं, पर वह काम धंधा ही एक धर्म है;—जिस भाँति पूजा, सन्ध्या, उपासना धर्म हैं—जिस भाँति अतिथि सेवा, दान, व्रत, धर्म हैं—काम धंधा भी उसी भाँति धर्म है, आज कल की हिन्दू पत्नियाँ इस बात को भूली जा रही हैं। इस भारी भूल ही के सबब स्त्रियों में इतनी अवनति हो रही है, हम ऐसा समझते हैं। क्यों ऐसा समझते हैं, सो भी हम कहते हैं।

देखो, हिन्दू पत्नी जिसे धर्माचरण समझती है, उसे कैसी सावधानी से, कैसे यत्न से, कितना डर डर कर किया करती है। हिन्दू के पूजा की जगह, पूजा के सामान, कैसे पवित्र, कैसे सुन्दर होते हैं!

पूजा उपासना के साथ धर्म का सम्बन्ध जान कर हिन्दू स्त्री ऐसे पवित्र चित्त से, ऐसे पवित्र शरीर से, इतने यत्न से, ऐसी सावधानी से, इन सब कामों को किया करती है। परन्तु जिसका नाम गृहस्थी या काम धंधा है, उसमें उसका हृदय इतना पवित्र नहीं रहता, उसके लिये शरीर को पवित्र रखने की इतनी ज़रूरत वह नहीं समझती। इसीलिये उसमें इतना ढीलापन, इतनी बेचैनी, इतने लड़ाई झगड़े, पल पल में इतने बार बार पाँव फिसल जाया करते हैं। वे समझती हैं कि काम धंधा बिना किए शरीर की रक्षा नहीं होती,—गृहस्थी नहीं निभती। परन्तु नित्य के काम काज, रहन सहन, मेल मिलाप के बर्त्ताव का नाम भी धर्माचरण है—ये भी सुख पाने के उपाय हैं—इन्हींका नाम असली सुख है। वे काम काज करके शरीर की रक्षा भर कर लेती हैं, परन्तु सुख पाने के लिये दूसरे उपाय ढूँढ़ती हैं। इसीलिये हिन्दुओं के घरों में अब वह पवित्रता नहीं रही, अपने स्वार्थ को भूल कर परोपकार से परमार्थ पाने के चमकते हुए दृष्टान्त अब नहीं देख पड़ते, वह शान्ति नहीं रही, वह सुख भी नहीं रहा।

सच पूछो तो आज कल की हिन्दू पत्नी को असल में "सहधर्म्मिणी" कहना ठीक नहीं है, वह अब "प्रणयिनी" भर रह गई है। और स्त्रियाँ भी ऐसा ही सोचती हैं। स्वामी के धर्म, अधर्म, छोटे बड़े सब काम, अब वे इनमें से किसको आँख उठा कर देखती हैं? स्वामी को क्या करना चाहिए, क्या नहीं चाहिए, स्वामी के धर्म की रक्षा करने के लिये

हमको क्या क्या करना चाहिए, क्या न करना चाहिए, कौन स्त्री अब इन बातों का विचार रखती है? एक बात की ख़बर वे जरूर रखती हैं—और उसी एक ही बात को चाहती भी हैं। वे चाहती हैं कि पति उनसे खूब प्रेम रक्खा करे, और वे पति से खूब प्रेम किया करें। इस प्रेम का मतलब बहुधा दो चार मीठी मोठी बातें, या किसी काम या वस्तु के लिये हठ करना भर हुआ करता है। मानो यह मोहिनी ही पति से पूजा पाने योग्य इकलौती देवता है। यह 'प्रेम' है क्या, उसे वे न देखतीं हैं न देख सकतीं हैं और देखना चाहती भी नहीं। इस प्रेम का मतलब बहुधा--सौ पीछे निन्नानवें जगहों में—इन्द्रियों के सुख का मोह या ऐसी ही कोई ओछी बात मात्र है—इतना वे नहीं समझतीं। और इसीसे इस दारुण हलाहल को पी पी कर अपना नाश कर रही हैं और अपने पतियों का भी नाश कर रही हैं।

नहीं मालूम ऐसा क्यों हो गया। अंग्रेज़ी प्रेम की कहानियाँ पढ़े हुए पतियों के ही पास से ऐसा 'प्रेम' हिन्दूओं के घरों में घुस आया होगा। इतना ही नहीं, आजकल के विद्याभिमानी पति पत्नियों की नस नस में, हड्डी हड्डी में, प्रेम का नशा घुस रहा है, मानो एक इसी वृत्ति का तृप्त करना ही हिन्दू दम्पती का एक बड़ा-बहुत ही बड़ा—सुख समझा जाता है। हिन्दी में लिखे हुए उपन्यास इसी भाव को पुष्ट कर रहे हैं। उपन्यास के लिखने वाले अंग्रेजी ढंग के प्रेम की कहानी ही लिखते हैं। ये लेखक भी हिन्दू घरों में आग लगा रहे हैं।

इन बातों को देख सुन कर हृदय फटने लगता है। क्या करें, किधर जावें, किसकी ओर देखें? जो स्त्रियाँ समाज में अपने को विदुषी—शिक्षा पाई हुई—समझती हैं, वे इस प्रेम के अधिकार ही में उलझी रहती हैं—इस जन्म में सह-धर्म्मिणी बनने की फुरसत उनको क्यों कर मिल सकती है? गृहस्थी के काम-धन्धे उनके सामने महा तुच्छ छोटी बातें हैं। धर्म से इसका कुछ भी सम्बन्ध रहना वे क्यों मानने लगीं? बस इसे वे महा नीच काम समझती हैं। वे दौड़ती हैं बड़ी बड़ी बातों की ओर—राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति आदि बड़े बड़े विषयों ही में वे लगी रहती हैं—घर गृहस्थी के काम धन्धे की बात वे कब सोच सकती हैं? और जो शिक्षित नहीं हैं उनमें से बहुतेरी घर के काम करती तो हैं, पर हम पहले ही कह चुके हैं कि उसे परम पवित्र धर्मानुसार समझ कर नहीं करतीं, बिना किए बस नहीं चलता इसीसे करती हैं। उपासना, पूजा, व्रत, यज्ञ, ये सब जैसे हैं, गृहस्थी के काम भी वैसे ही हैं, इस बात को वे जानती ही नहीं। इसीसे अब हमारा गृहस्थाश्रम ही नहीं रहा। जो है वह भोग-विलास की जगह मात्र है। गृहस्थाश्रम में अब 'सह-धर्म्मिणी' नहीं रही है—उसकी जगह प्रेम की प्यासी 'प्रणयिनी' ने ले ली है।

इसीसे हमारे मन में बड़ी इच्छा होती है कि इन हिन्दू पत्नियों को हम फिर उस पुराने गृहधर्म की सहधर्म्मिणी के पद पर प्रतिष्ठित देखें। घर गृहस्थी भी एक मुख्य धर्मानुष्ठान है, ऐसा समझ कर शिक्षिता ललनाएँ सहधर्म्मिणी

धर्म को पालने लगें तो फिर हमारे गृहस्थाश्रम ही से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारो प्रकार के फल हम लोगों को मिल सकें। अहा, न जाने कब हमारी यह मनोकामना पूरी होगी ? कब हिन्दू रमणी फिर सहधर्म्मिणी के ऊँचे पद पर विराज कर स्वामी के छोटे बड़े सब कामों में सहायक बन कर दोनों लोकों के सुख लूट सकेगी ? क्या हिन्दुओं के ऐसे दिन फिर कभी आवेंगे ?

गृह-धर्म के पूरा करने में पति की सहायता करना पत्नी को बहुत ही उचित है। इस बात को न भूल कर काम करने ही से सब काम धर्म के अनुसार होने लगेंगे। गृह-धर्म में परिवार का पालन, अतिथि अभ्यागतों की सेवा और दीन दुखियों पर दया आदि कई एक भारी काम हैं। उन सबों को करने के लिये अपने सुख को तुच्छ समझना पड़ेगा। हिन्दुओं का परिवार अकेले पति ही को लेकर नहीं होता, इस परिवार में बहुत लोग हुआ करते हैं, इन सभों को सुख से रखना पड़ेगा। अपने सुख को दूसरों के सुख के लिये छोड़ देना होगा; और छोड़ ही देना क्यों होगा, अपने सुख की राह देखते न रहने से वह सुख आपही आप बिन माँगे मिलने लगेगा। गृह-धर्म के पालने में कई काम पति के करने के होते हैं और कई पत्नी के। जैसे, धन कमाना स्वामी का काम है, अतिथि और परिवार को आनन्द से भोजन कराना स्त्री का काम है। स्वामी स्त्री प्रेम से बैठ कर एक दूसरे का मुख देखा करें इतने ही से काम नहीं चलेगा—हिन्दू पत्नी को हिन्दू पति की सहधर्म्मिणी बनना पड़ेगा। नहीं मालूम

तुम लोग उसको प्रेम किस तरह कहती हो जिससे स्वामी के धर्म की हानि हो? उसको किस तरह स्वामी का सुख कहती हो जिससे अन्त में स्वामी को दुःख मिले? प्रेम बहुत अच्छी बात है, सुख की चाह भी बहुत अच्छी बात है परन्तु इन बातों को तुम लोग अच्छी तरह से समझतीं नहीं हो। इसीलिये तुमको इस तरह शिक्षा देनी पड़ती है॥

पढ़ना लिखना ।

स्त्री—फिर कब आओगे ?

स्वामी—सो मैं कैसे कह सकता हूँ । इस बार इमतिहान देना है । शायद जल्दी नहीं आ सकूंगा ।

स्त्री— कभी कभी चिट्ठी लिखना ।

स्वामी—मैं तो लिखूंगा, पर तुम क्या करोगी ? तुम्हारी खबर पाने के लिये क्या मेरा जी नहीं चाहा करता ?

स्त्री—तो भला बताओ मैं क्या कर सकती हूँ । मैं तो पढ़ना लिखना जानती ही नहीं । किसीसे लिखवा कर भिजवा दिया करूँगी ।

स्वामी—देखो तो सही, पढ़ना लिखना न सीखने से कैसी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं । मैं तुमको चिट्ठी लिखूंगा, पर तुम उसे नहीं पढ़ सकोगी, कोई दूसरा उसको पढ़ेगा, इसलिये अपने मन की सब बातें भी नहीं लिख सकूँगा । तुम्हारी खबर पाने के लिये चित्त लगा रहेगा, तुम दूसरे लोगों की खुशामद करते करते कहीं महीने भर में एक आध चिट्ठी भिजवाओगी ; दूसरा आदमी उसे लिखेगा, सो तुम भी अपने मन की सब बातें नहीं लिखवा सकोगी । मैं जब घर आता हूँ, तुमसे इतना कहा करता हूँ, तुम कुछ ध्यान नहीं देतीं । मान लिया पहिले तुम छोटी थीं, पर अब तो सयानी हो गई हो, अब तो सब बातें समझने लगी हो, क्या अब भी पढ़ना लिखना नहीं सीखोगी ?

स्त्री—मेरा तो जी बहुत चाहता है, पर चाची कहती हैं कि औरतों को पढ़ना नहीं चाहिए, पढ़ने से वे विधवा हो जाती हैं ।

स्वामी—ये सब झूठे विचार हैं! तुम अब आलस्य मत करना। मैं जाते ही किताब भेज दूँगा। तुम नित्य अपने बड़े भैया के पास पढ़ा करना।

स्त्री—नहीं, मैं नहीं पढ़ूँगी।

स्वामी—क्यों? पढ़ने लिखने से कितने फायदे हैं, न पढ़ने से कितने नुकसान हैं, यह सब जान कर भी तुम ऐसा कह रही हो?

स्त्री—पढ़ना लिखना तो तुम्हें चिट्ठी लिखने ही के लिये है न? नहीं तो औरतों को दफ़्तर में जाकर नौकरी थोड़े ही करनी है। इतने ही के लिये हजारों बातें सुननी पड़ेंगी, इस से न सीखूँ तो कुछ हर्ज है क्या? फिर बहुत दिन तक तो तुमसे अलग रहना भी नहीं है।

स्वामी—तुम्हारी अच्छी अकल है। नौकरी करना और चिट्ठी लिखना छोड़कर क्या कुछ और मतलब नहीं है? गृहस्थी में स्त्री जब सब बातों में स्वामी की मित्र है, सब बातों में जब उसे स्वामी की सहायता करनी है, तब उसकी सहायता के लिये भी तो पढ़ना लिखना सीखना चाहिए। किताब के पढ़ने को शिक्षा नहीं कहते, उसमें जो कुछ लिखा रहता है उसका जानना ही शिक्षा है। शिक्षा का मतलब बुद्धि और ज्ञान की बढ़ती से है।

स्त्री—वाह! क्या स्त्री कोट पतलून चढ़ा कर सिर पर पगड़ी डाट कर दफ़्तर में जाकर स्वामी की सहायता करेगी?

स्वामी—क्या दफ़्तर ही जाने से स्वामी की सहायता हो सकती है? लो, मैं एक बहुत छोटी सी बात कहता हूँ। स्वामी दिन भर का थका माँदा पसीने से तर होकर कचहरी

से घर आता है, तब उसको गृहस्थी के छोटे छोटे हिसाब लिखने या जोड़ने में बड़ा दुःख होता है। और कुछ नहीं तो यदि स्त्री घर के छोटे छोटे हिसाबों को ही घर में बैठ कर लिख रक्खा करे तो भी स्वामी को बहुत कुछ सहारा मिल सकता है।

स्त्री—वाह! हमलोग हिसाब नहीं रखतीं तो और कौन रखता है?

स्वामी—रखती तो तुम ही लोग हो, पर लिखना पढ़ना जानतीं तो उसे और भी आसानी से और ठीक ठीक रख सकतीं। धोबी कपड़े ले गया, अँगुलियों पर गिन कर तुमने याद रक्खा, दो बीस और ग्यारह, पर उन कपड़ों में से एक आध अच्छे कपड़े धोबी बदल लावे, नये दुपट्टे की जगह पुरानी धोती गिना जावे तो कैसे बताओगी? अहीर नित्य दूध दे जाता है, तुम भी भीत पर गोबर का टीका लगाकर रखने लगीं, पर जो उनमें से दो एक टीके किसी तरह से मिट जावें, या भूल से एक टीका ज्यादा ही लग जावे तब? तुम लोगों के हिसाब तो ऐसे ही होते हैं न? जो तुम पढ़ना लिखना सीख लेतीं तो कितना आराम मिलता?

स्त्री—चाची, अम्मा और सब बड़ी बूढ़ियाँ पढ़ना लिखना नहीं जानतीं हैं, क्या वे इन हिसाबों को नहीं रखती हैं?

स्वामी—रखती क्यों नहीं हैं! पर पल भर का काम दिन भर में होता है—सो भी हर बार ठीक नहीं होता। और विद्या सीखने से एक हिसाब रखने ही का काम नहीं, बहुत सी ज़रूरत की बातें जान सकोगी, कितने ग्रन्थों की कितनी ही बातें सीख लोगी, अच्छे पुस्तकों को पढ़ कर अपने

मन को आनन्द दिला सकोगी और तुम्हारा ज्ञान बढ़ेगा। जिस समय तबियत किसी काम में नहीं लगी, कोई अच्छी सी पुस्तक पढ़ कर सब दुःख भूल गईं। बड़े दुःख के सम में भी अच्छी पुस्तक पढ़ने से दुःख का बोझ हलका हो जात है। विद्या सीखने से बड़े लाभ हैं। थोड़ा सा भी पढ़ लोगी तो मेरी बात समझ में आ जायगी।

स्त्री—लाभ तो जरूर हैं। पर मैं सोच रही हूँ, कहीं अम्मा मना कर बैठें तो?

स्वामी—और देखो, विद्या न सीखने से और भी ए महा अनर्थ होता है। जो माता पढ़ना लिखना जानती है उसके बाल बच्चे बहुत जल्दी पढ़ना सीख लेते हैं। तुम अपन माता के डर से पढ़ना नहीं चाहतीं, आगे चल कर तुम्हा बच्चे भी अपनी मा के डर से नहीं पढ़ेंगे। बालकों की आद ऐसी ही होती है-वे जैसा देखते हैं वैसा ही सीख लेते हैं। औ माता के गुण और दोष सन्तान में सहज ही आ जाते हैं माता शिक्षा दे सके तो बच्चे जितनी जल्दी सीख लेते हैं हज़ार गुरू जी भी वैसा नहीं सिखा सकते। और कुछ नहीं तो अपनी सन्तान की भलाई के लिये माता को जरूर शिक्ष पानी चाहिए।

स्त्री—अच्छा, तुम्हारी यही मर्ज़ी है कि पढ़ना लिखन सीख लूँ।

स्वामी—क्या इसमें कुछ सन्देह है? मेरी मर्ज़ी कब पूर करोगी?

स्त्री—और जो पूरी हो जावे?

स्वामी—सच ?

स्त्री—सच। अजी बात यह है! तुम तो परदेश जाते हो। मुझे तुम्हारी ओर का फिकर दिन रात रहेगा। बहुत खुशामद करूँगी तब कहीं कोई चिट्ठी लिख देगा। उसमें भी पचास तरह के झगड़े। बहुत सी बातें ऐसी हैं कि दूसरे से लिखवाई भी नहीं जा सकतीं। सो अब मैं पढ़ना लिखना जरूर सीखूँगी। तुम जाते ही एक किताब मेरे लिए भेज देना।

स्वामी—पहुँचते ही मैं भेज दूँगा, तनिक ध्यान देकर पढ़ना। के दिन पीछे मुझे चिट्ठी लिख सकोगी बताओ तो ?

स्त्री—देखो तो भला, यह मैं अभी से कैसे बता सकती हूँ ?

स्वामी—तुम नहीं जानती हो, जिस दिन तुम्हारे हाथ की लिखी हुई चिट्ठी मेरे पास पहुँचेगी उस दिन मुझे कितना आनन्द मिलेगा। आज इतने दिनो पीछे अभी तुमने कहा कि मैं पढ़ना लिखना सीखूँगी, इतने ही से मुझे जैसा आनन्द मिल रहा है, उसे मैं तुमसे कैसे कहूँ। अभी से मैं स्वप्न देखने लगा कि तुम बैठ कर मुझे चिट्ठी लिख रही हो, पहले पहले लिखती बेर कितनी लाज लग रही है, कितनी बातों को लिख कर फिर काट डालती हो, अन्त में एक पत्र तैयार होकर मेरे पास पहुँचा है, मैं उसे पढ़ रहा हूँ, एक बार, दो बार, न जाने कितने बार पढ़ रहा हूँ पढ़ते पढ़ते मेरा जी ही नहीं भरता। फिर मानो मैं यह देख रहा हूँ कि तुम मेरे सामने बैठ कर रामायण पढ़ रही हो, तुम्हारे केश उड़ उड़ कर तुम्हारे मुखड़े पर पड़ रहे हैं, दोनो ओठ धीरे

धीरे हिल रहे हैं, टकटकी बाँध कर मैं देख रहा हूँ। सा
दुनिया मेरे सामने सूनी जच रही है, मेरा सारा शरीर मानो आँ
में समा कर तुम्हारी छवि देख रहा है, मैं मानो स्वर्ग का सु
भोग रहा हूँ। अहा, क्या सचमुच ऐसा दिन भी कभी आवेगा

स्त्री—चलो, हटो! बातें बनानी तुमको बहुत आती है
अभी से जागते जागते सपना देखने लगे!

स्वामी—नहीं, नहीं, मैं हँसी नहीं करता हूँ। बताओ मे
यह स्वप्न सच निकलेगा या नहीं?

स्त्री—हाँ, हाँ, सच निकलेगा।

स्वामी—साल भर के भीतर मुझे चिट्ठी लिख सकोगी न

स्त्री—हाँ हाँ लिख सकूँगी। पर बुरे अक्षर देख कर फा
कर फेंक न देना।

स्वामी—फाड़ कर फेंक दूँगा! तुम्हारे टेढ़े मेढ़े अक्षर
मुझे सोने के अक्षरों से भी कीमती हो जायँगे।

स्त्री—मैं साल भर में लिखूँ या छ महीने में लिखूँ, इस
भरोसे तुम कहीं निश्चिन्त न रहना। दूसरे तीसरे दिन मुझ
चिट्ठी लिखा करना। कुछ बड़े बड़े अक्षर लिखना, मैं उन
पढ़ा करूँगी। अब कब लौटोगे?

स्वामी—कहा तो, इस बार आने की कुछ ठीक नहीं है।

स्त्री—मैंने तुम्हारी इतनी बातें मान लीं, तुम्हें भी मे
एक बात माननी पड़ेगी।

स्वामी—कहो तो कौन सी बात है?

स्त्री—जल्दी आना।

स्वामी—अच्छा।

———

गहने कपड़े

स्वामी—क्यों, अब तो मैंने तुम्हारी बात मान ली। देखो कैसी जल्दी आ गया। अब तो प्रसन्न हुईं ?

स्त्री—हाँ (लज्जा से सिर झुका लिया)

स्वामी—तुमने हमारी बात कैसे मानी है, देखूँ।

स्त्री—देखने के लिये क्या लाए हो, पहले उसे सामने धर दो।

स्वामी—लाता क्या, कहाँ से लाता ?

स्त्री—यही तुम्हारी बात है ! तुमने तो लिख भेजा था कि ज्ञानमाला शुरू करते ही मैं तुम्हारे लिये नौनगा ले आऊँगा।

स्वामी—ज्ञानमाला शुरू कर दी है क्या ? मुझको तो तुमने कुछ भी नहीं लिखा था। दो ही महीने के भीतर पहिली पुस्तक, दूसरी पुस्तक दोनो खतम हो गईं और ज्ञानमाला भी शुरू कर दी, इस बात को तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। सच कहना, ज्ञानमाला पढ़ रही हो क्या ?

स्त्री—सच नहीं तो क्या झूठ। यह देखो—"कौआ और पानी का घड़ा" वाला पाठ पढ़ रही हूँ। एक कौए ने घड़े में पत्थर के टुकड़े डाल डाल कर अपनी प्यास बुझा ली थी और मैं आदमी होकर भी विद्या नहीं सीख सकूँगी। लाओ, अब तो मेरा नौनगा लाओ।

स्वामी—और ज्यादा जिद न करो। अगली बार ज़रूर लेता आऊँगा।

स्त्री—फिर मैं अकेला नौनगा ही नहीं लूँगी। इन कड़ों को तुड़वा कर मुझे नई चाल के कड़े बनवा देना।

स्वामी—कैसे और कहाँ बनवाऊँगा ?

स्त्री—सो मैं क्या जानूँ । चाहे कहीं से बनवाओ ।

स्वामी—सच कहना, ज्ञानमाला पढ़ कर तुम्हें ज्ञान खूब मिला है ! मैं कड़े कहाँ से बनवाऊँ सो तुम नहीं जानतीं पर गहनों का पहिरना तुम जानती हो !

स्त्री—तुम बस, बातें बनाना जानते हो । मेरे पास हैं कितने गहने ! छोटेलाल की बहू के गहने तो देखो ।

स्वामी—मैं किसी के गहने देखना नहीं चाहता । मैं तो तुम्हें सच्चे गहने पहिरे देखूँ तो मुझे खुशी हो ।

स्त्री—तुम बनवाओगे ही नहीं तो मैं पहरूँगी कहाँ से !

स्वामी—क्यों, तुम्हारे पास जितने गहने हैं, अगर उन्हींको सफ़ा करके पहिर लो तो कैसी सुन्दर लगोगी ।

स्त्री—वाह ! हैं ही कितने गहने, जो उनको सफ़ा कर पहिरूँ ? कितने गहने हैं सो ?

स्वामी—क्यों, है क्या नहीं ? सब स्त्रियों के पास जितने गहने रहते हैं, तुम्हारे पास भी उतने ही हैं । तुम उनको नहीं पहरो तो इसमें मेरा क्या दोष ?

स्त्री—यह अच्छी कही !

स्वामी—क्यों, तुम्हारे पास क्या नहीं है ?

स्त्री—तुम्हीं बताओ क्या है ?

स्वामी—विनय, नम्रता, लज्जा, परोपकार की इच्छा, स्वभाव की मधुरता, ये सभी गहने तुम्हारे पास हैं । जी चा

इनको साफ़ उजला करके पहिर लो। पहिरने को तुम्हारा जी ही नहीं चाहता, मैं क्या करूँ ?

स्त्री—हाय, हाय, इनकी बातें तो सुनो। यही तुम्हारे गहने हैं ? मैंने समझा न जाने कितने गहने होंगे।

स्वामी—ये सब तुम्हारी आँखों में जँचते ही नहीं ?

स्त्री—बस, रहने भी दो।

स्वामी—हँसी की बात नहीं है। स्त्रियों के लिये इनसे बढ़ कर कीमती गहने और क्या हो सकते हैं ? सोना चाँदी कै दिन के लिये हैं ? कै दिन उनसे शरीर सुन्दर लगेगा ? कै दिन लोग तुम्हारे सोना, चाँदी, हीरा, मोती को देख कर बड़ाई करेंगे ? अच्छे गुणों को बढ़ाओ, युग युग तुम्हारी प्रशंसा होगी। सीता चली गई हैं, पर अब तक उनकी प्रशंसा बनी हुई है। सावित्री चली गई हैं, पर अब तक लोग घर घर में सावित्री की कथा पढ़ा करते हैं।

स्त्री-तुमसे तो बोलना ही बड़ा कठिन है। देखो तो भला !

स्वामी—मैंने कुछ बढ़ाकर नहीं कहा है। बाहर की सुन्दरता दुनिया में कै दिन ठहरती है ? देखते देखते काल की लहर में वह बह जाती है। आज जिसे देख कर हमारा मन मोहित हो जाता है, चार दिन पीछे उसका नाम तक नहीं रहेगा, लाख यत्न करने पर भी हाथ नहीं आवेगा। वे गहने कपड़े यों ही पड़े रह जावेंगे। पर जो स्त्री पवित्रता के कीमती वस्त्र पहिर कर, शील और विनय आदि के उजले चमकते हुए गहनों से देह की शोभा बढ़ाया करती है, उसकी सुन्दरता की सब बड़ाई करते हैं।

स्त्री—अच्छा, बस ज्यादा ज्ञान मत छाँको। अब से कभी मैं तुमसे गहने को न कहूँगी?

स्वामी—यह मत समझना कि तुमने आज मुझसे गहना माँगा है इसलिये मैंने इतनी बातें कहीं हैं। नौनगा अगली बार तुम्हारे लिये ज़रूर ले आऊँगा, और बन पड़ा तो कड़े भी बनवा दूँगा। पर मेरे कहने का मतलब यह है कि जो गहने तुम्हारे पास मौजूद हैं उनको बेकाम मत रहने दो। विनय से बोलना सीखो, साधुओं की चाल सीखो; देख लेना, नए चाल के जगमगे कड़ों से भी ये गहने भले लगेंगे।

स्त्री—ऐसा होता तो गहने बनते ही काहे को?

स्वामी—क्या स्वामी पर जुलुम करने ही के लिये गहनों की चाल चलाई गई है? क्या गहनों के न पहरने से सुन्दरता घट जाती है? तुमको शकुन्तला की कथा मालूम है?

स्त्री—हाँ, रज्जन भैया एक दिन पढ़ रहे थे, सो मैंने भी सुनी है। क्यों पूछते हो?

स्वामी—जब शकुन्तला को तपोवन में देख कर राजा दुष्यन्त मोहित हो गए, तब उसके शरीर पर कितने हीरा, पन्ना, मोती के गहने लदे हुए थे?

स्त्री—हीरा, मोती चाहे न रहे हों, फूलों के गहने तो वह पहरे ही थी।

स्वामी—क्या राजा दुष्यन्त फूल के गहनों ही को देख कर अपनी सुध बुध खो बैठे थे? क्या उनके महल में गहनों की कुछ कमी थी! शकुन्तला के स्वभाव की मधुरता, लाज से मिला हुआ भोलापन, मीठी मीठी बोली,

लड़कियों की सी चंचलता, साथ ही कुछ गम्भीरता, ये सब गुण राजा के महल में भी दुर्लभ हैं। इन्हीं सब गुणों को देख कर राजा दुष्यन्त मोहित हो गया, वह खड़ा खड़ा सब कुछ भूल कर इन्हींकी शोभा देखता रह गया। वैसा निर्मल शान्त स्वभाव, वैसी पवित्रता, वैसी सरलता से भरी हुई हँसी, प्रेम से खिला हुआ कमल का सा मुख हर जगह नहीं मिल सकते। इन सब अच्छे गुणों से जैसी शोभा होती है वैसी हज़ारों रुपए के सोना, चाँदी, जवाहर लाद लेने पर भी नहीं हो सकती। फिर, पक्का संकल्प करके थोड़ी ही सी सावधान होकर अपनी चालों पर नज़र रखने से ये सब गहने आपही मिल सकते हैं। सोना, चाँदी के गहने भी भला गहनों की गिनती में हैं?

स्त्री—मैं क्या जानू, सभी स्त्रियाँ गहने पहिरा करती हैं, इसीसे मेरा भी जी चाहता है; जो पहरना बुरा होवे तो मैं और कभी जिकर भी न करूँगी।

स्वामी—यह कौन कहता है कि गहने पहिरना बुरा है, पर हाँ, यह मैं ज़रूर कहता हूँ कि जो गहने सच्ची सुन्दरता देते हैं, पहले उनको पहिरने की चाह तुम्हें क्यों नहीं होती?

स्त्री—क्या मुझे इसकी चाह ही नहीं है?

स्वामी—अकेले चाहने ही से क्या होगा, उसके लिये यत्न भी तो करना चाहिए, उस पर दृष्टि भी तो रखनी चाहिए।

स्त्री—अच्छा, अब से मैं ऐसा ही करूँगी। पर गहने चाहे मत दो, दो एक अच्छे कपड़े तो ला दोगे ?

स्वामी—तुमको गहने कभी नहीं बनवाऊँगा, यह तो मैं नहीं कहता, न मैं उनका पहिरना ही मना करता हूँ। मैं नौनगा तो अगली बार जब आऊँगा लेता आऊँगा। कपड़े कैसे चाहिएँ ?

स्त्री—तुमने चम्पा को उस दिन एक साड़ी पहिने देखा था न ? वह 'करेब' की थी, मेरे लिये भी वैसी ही एक साड़ी ला देना। खतरानियों में ऐसी साड़ियों की बहुत चाल है।

स्वामी—तुम्हारी बात सुन कर तो मेरे होश ही उड़ जाते हैं। राम, राम, 'क्रेप' पहरने के बदले नंगी ही क्यों न रहा करो। क्रेप या शान्तिपुरी, या बंगला फेशन की साड़ियां भी कहीं भले घर की बहू बेटियाँ पहनती हैं। बंगालियों की देखा देखी इस देश की स्त्रियों में भी इसकी बुरी चाल होती जाती है। पर तुमको मालूम नहीं है कि अच्छे बंगाली भी ऐसे बारीक कपड़ों का पहरना बुरा समझते हैं। और उनकी स्त्रियाँ साड़ियों के नीचे एक मोटे कपड़े का लम्बा कुर्त्ता सा पहरा करती हैं। जो तुम उनकी नकल उतारने लगोगी तो जो तुमको देखेगा वही हँसने लगेगा। भला बारीक कपड़े पहरने में तुमको लाज नहीं लगेगी ?

स्त्री—तुम कैसे कपड़ों को अच्छा कहते हो ?

स्वामी—हमारे देश में लहंगे, ओढ़नी की चाल अब उठती जाती है। उनके बनाने में बड़े कीमती कपड़े लगते हैं

पर आज कल हिन्दोस्तान की करीब करीब सभी जाति की स्त्रियाँ साड़ी ही को पहनती हैँ और जान पड़ता है कि साड़ी ही इस देश मेँ पुराने समय से पहनी जाती है। सो मेरी राय मेँ बनारसी साड़ी या आज कल की बम्बई की साड़ी भी बहुत अच्छी है। जिस दाम की चाहो मोल ले लो। दाम पास रहे तो बढ़िया से बढ़िया साड़ियाँ मिल सकती है, नहीँ तो सस्ते दाम की भी मिल जाती हैँ। अकसर कपड़े मोटे सुन्दर हुआ करते हैँ। अच्छी किनारी वाली मोटे कपड़े की साड़ियाँ ही सदा पहिरने के लिये अच्छी होती हैँ। पर चाहे इन कपड़ोँ मेँ सब गुण होँ, सफ़ाई पर ध्यान ज़रूर रखना चाहिए, घर मेँ तो पहिरने के कपड़े नित धोने ही चाहिये, तब भी चार दिन पीछे न सही तो अठवारे मेँ एक बार तो धोबी के डाल देने चाहिये! मैले कपड़े देखने मेँ तो बुरे लगते ही हैँ, पर उनसे बीमारियाँ भी पैदा होती हैँ। सब जगह धोबी महाराज की दया पर भरोसा करके बैठे रहने से काम नहीँ चलता। खार मेँ उबाल कर अपने घर ही मेँ कपड़े साफ किए जा सकते हैँ। पर बनारसी या बम्बई वाले कीमती कपड़े मामूली धोबी के घर भी नहीँ धुल सकते, इसीसे उन्हेँ कोई नित्य पहर भी नहीँ सकता। नित्य के लिये किनारीदार सूती साड़ियाँ मँगवा लिया करो। पर कुछ भी हो—चाहे अच्छे गहने होँ, चाहे कपड़े ही होँ, उनको सफ़ाई से न रख सके तो अच्छे नहीँ लगते। अच्छे गहने और कीमती कपड़े सब के भाग्य से नहीँ मिल सकते, परन्तु सफ़ा कपड़े पहिरना छोटे बड़े सभी के हाथ मेँ है।

५

ससुराल

स्वामी—फिर ?

स्त्री—फिर क्या, बनी बनाई रसोई किसी के मुँ
तक नहीं पहूँची। अम्मा छोटी बहू को बुलाने गई, छो
बहू ने किवाड़ ही नहीं खोले। वह हठ करके बैठी थी कि
आज ही मायके चली जाऊँगी।

स्वामी—इसका सबब क्या था ?

स्त्री—सबब और क्या था—छोटी बहू का लड़का सम
मदरसे जाने के लिये रसोई जीमने बैठा। तब तक सब चीं
नहीं बनी थीं। बड़ी बहू ने सम्भू को चार आम दे दिए
सम्भू ने उन चारों को खा लिया, और आम माँगे, अम्मा
उसे दो आम और दे दिए। पर सम्भू फिर भी आम माँ
लगा, तब अम्मा ने कहा—तू ही सब आम खालेगा तो औ
लोग काहे से रोटी खायँगे ? अम्मा ने उसे और आम न
दिए। सम्भू रोने लगा। तब अम्मा सम्भू को धमकाने लगी
और धमकाते धमकाते एक आम और दे दिया। छोटी ब
बैठ कर पान लगा रही थी। उसने अपना मुँह फुला लि
और सम्भू को खूब मारा और उसकी थाली से आम लेक
दूर फेंक दिया। "कमबख़्त बिना आम के रोटी मुँह में नहीं
चलती। नित्य तेरे लिये इतने आम कहाँ से आवेंगे ?" यों क
कर फिर मारा। सम्भू फूट फूट कर रोने लगा। अम्मा
तब आकर कहा—क्यों री बहू ! क्या तेरे बेटे को आम नहीं
मिले हैं जो तू ऐसा कर रही है ?" झट से छोटी बहू बोली—
"हाँ जी हाँ, बड़ी बहू के लड़के चाहे सब खा जावें, तुम

तक नहीं करतीं, और जो यह लौंडा खाने को माँगे तो तुम आफत मचा देती हो।" यों कह कर वह सम्भू के हाथ धुलवाने को लिवा गई। अम्मा तो सुन कर थोड़ी देर चुप हो गई, पर फिर कहने लगी—"यह घर का लच्छन है; जो अच्छे घर की होती तो ऐसा न होता।" बस फिर क्या था। इतना सुनना था कि छोटी बहू के तन में आग बल उठी। अम्मा को उसने हज़ारों बातें सुना दीं। अम्मा भी उसे धमकाने लगीं। तब छोटी बहू सम्भू के हाथ में दो पैसे थमा कर, और उसे मदरसे भेज कर रोती रोती अपनी कोठरी में किवाड़ बन्द करके जा बैठी।

स्वामी—तुम्हारे छोटे भैया तब कहाँ थे?

स्त्री—छोटे भैया तब घर पर नहीं थे। लौट कर सब बातें उन्होंने सुनीं। पर बहू से उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। उलटे अम्मा ही पर नाराज़ होने लगे। हाँ, उन्होंने अम्मा के डर से खुल कर कुछ नहीं कहा। पर छोटी बहू की हठ रह गई है। अम्मा से जब कुछ न बन पड़ा तो वह भैया से बोलीं—"भैया वह जो कहे सोई करो, विना खाए पिए के दिन जिएगी? मायके जाने को कहती है, सो भिजवा दो।" बड़े भैया की भी यही राय हुई। छोटी बहू कल मायके जायगी।

स्वामी—अच्छा तमाशा हो रहा है।

स्त्री—पर सब लोग छोटे भैया को धिक्कार रहे हैं।

स्वामी—मैं सोच रहा हूँ, कहीं लोग मुझे भी किसी दिन इसी तरह से न धिक्कारने लगें।

स्त्री—यह क्या कह रहे हो?

स्वामी—मैं क्या जानूँ, तुम लोग सब कुछ कर सकती हो।

स्त्री—भला, भला, मैं समझ गई, छोटी बहू से मेरी बराबरी कर रहे हो! भला मैं ऐसा कर सकती हूँ। जिस रोज़ ऐसा करूँगी तो क्या डूबने को पानी न मिलेगा।

स्वामी—राम राम, ऐसी बात मत कहो।

स्त्री—तुमने मुझसे बड़ी अच्छी बात कही है न? मा बाप और सास ससुर कहीं न्यारे होते हैं।

स्वामी—होते तो नहीं, पर इतनी समझ सब को नहीं होती।

स्त्री—कोई कुछ करे मुझे इन झगड़ों से क्या काम। मुझे मेरी समझ बनी रहे, मैं इतना ही चाहती हूँ।

स्वामी—ऐसा ही हो तो किस बात का डर है!

स्त्री—तुम लोग आप सचेत रहोगे तो हम लोग भी ठीक रहेंगी।

स्वामी—हमारा क्या कसूर है?

स्त्री—जो कसूर छोटे भैया का है! मैंने मान लिया कि औरत की अकल ही कितनी होती है, पर तुमलोग उसकी बात मान कर मा बाप का अपमान करने लगते हो। बताओ तो किसका कसूर ज्यादा है?

स्वामी—मैं हार गया।

स्त्री—हज़ार बार।

स्वामी—मैं हारूँ या जीतूँ इससे कुछ हानि नहीं। पर आज तुमने जिस बात को कहा है, उसे कभी भूलोगी तो

नहीँ ? सचमुच मा बाप से सास ससुर किसी बात मेँ कम नहीँ हैँ। स्त्रियोँ का मा बाप के साथ रहना तो थोड़े ही दिनोँ के लिये होता है, पर सारा जन्म सास ससुर के साथ काटना पड़ता है। विवाह होते ही लड़कियोँ का बाप के घर मेँ कुछ ज़ोर नहीँ रहता है। माता, पिता, भाई, बहिन, किसी के साथ उतना मेल नहीँ रहता। सास, ससुर, देवर, ननद ही के साथ दिन बिताने पड़ते हैँ। तब मा बाप की ख़बर ही सुननी गनीमत है या बहुत जी चाहा तो साल दो साल पीछे दो चार दिन के लिये जा कर उनसे भेँट कर आईँ। बस, उनके साथ इतना ही नाता रह जाता है। पर सास ससुर के साथ तो जन्म काटना पड़ेगा। इस लिये, उनकी भक्ति करना, दिन रात उनकी सेवा मेँ लगी रहना हर एक स्त्री का बड़ा भारी धर्म है। बेटे की बहू घर की लक्ष्मी होती है। सास ससुर उसे बड़ा प्यार करते हैँ, उसे लाख तरह से खिला पिला कर पहिरा ओढ़ा कर भी उनका जी नही भरता। फिर वही बहू जो सास की बराबरी करने लगे, जवाब देने लगे और लड़ने लगे, तो कैसी बुरी बात है!

स्त्री—इस बात मेँ रत्ती भर भी झूठ नहीँ है! जो बहू ऐसा करती है उसको सब बुरा कहते हैँ। उसके जीने को भी धिक्कार है।

स्वामी—स्त्रियोँ का न जाने कैसा स्वभाव है कि "मायके" का नाम सुनते ही पागल बन जाती हैँ। पर मायका कै दिन के लिये है? ससुराल तो जन्म भर के लिये होती है—वहीँ स्वामी और बाल बच्चोँ से गृहस्थी होती है। ससुराल मेँ सुख चैन से रहे, हर एक स्त्री को ऐसा करना चाहिए।

स्त्री—रामलाल की बहिन कहा करती है कि मेरे तो एक ही भाई है। ससुराल में बहुत लोगों की गृहस्थी है। कुछ पट्टीदार हैं। वहाँ से खींच कर अपने भाई के लिये जो कु ला सकूँ वही अच्छा। यों कह कर ससुराल से वह लो थाली तक चुरा कर भाई का घर भरा करती है। कैसी ला की बात है!

स्वामी—बड़ी ही लज्जा की बात है! कैसा नीच स्वभा है! पगली इतना भी नहीं समझती कि वह किसकी ची चुराकर किसको देती है। क्या छोटे भाई और देवर में कु अन्तर है? स्वामी की ख़ातिर से देवर को भाई से भी ज्याद मानना चाहिए। सीता जी लक्ष्मण को कितना मानती थीं क्या तुम नहीं जानतीं?

स्त्री—पर मैं भी यह कहूँगी कि लक्ष्मण सा देवर हो भी कठिन है।

स्वामी—प्यार और आदर से सब कुछ हो सकता है जो तुम उसका आदर करोगी, वह भी तुमको बिना मा नहीं रह सकेगा।

स्त्री—देवर चाहे कैसा भी हो—मेरे भाग में तो बदा नहीं है—पर सुना है कि ससुराल में ननद का दुःख बड़ भारी दुःख होता है।

स्वामी—दुःख क्यों न हो। मायके ही से तुम लोग नन के नाम ही पर इतनी घृणा सीखा करती हो, । भला उस साथ बरतोगी कैसे? वह चाहे कुछ करे, तुम यही जानती हो वह तुम्हारी दुश्मन है! फिर भला वह भी तुमको क्यों मान

लगी। तुम तो उसे बाघिन समझो, और वह तुम्हारे चरण छूकर प्रणाम करेगी ?।

स्त्री--मैं क्या यही कह रही हूँ ?'

स्वामी--कहती कैसे नहीं हो। भाई की स्त्री—जिससे तुम्हारे बाप का वंश उजागर होगा—गले में माला की की तरह पहन लेने की सामग्री है। तुम उसको क्या खिला-ओगी, क्या पिलाओगी, क्या पहिराओ उढ़ाओगी, तुम रात दिन इसी यत्न में लगी रहो। उसका थोड़ा सा भी आदर करने लगो, देखना वह भी तुमको मानेगी। भौजाई हो, तो ननद को अपनी बहिन की तरह मानो, देख लेना ननद से बढ़ कर सुख दुःख की साथी दूसरी कोई भी नहीं मिलेगी।

स्त्री—हाँ, दो एक ननद तो सचमुच ही दुःख की साथी देखने में आती हैं।

स्वामी—आदर सत्कार पावें तो सभी ननद ऐसी हो सकती हैं।

स्त्री--जहाँ सास बहू में कोई लड़ाई नहीं रहती, वहाँ ननद के साथ भी लड़ाई झगड़े का डर नहीं रहता। और जहाँ सास बहू में अनबन हो जाती है वहाँ कहीं ननद दुःख की साथी बन सकती है ?

स्वामी—क्या तुम्हे एक ऐसी ननद चाहिए ? तुम उसकी माँ से लड़ा करो और वह अपनी माँ का साथ न देकर तुम्हारे दुःख में साझीदार बना करे ! है न ? पर नहीं, ऐसी ननद भी हुआ करती हैं। जहाँ सास बहू की लड़ाई में सास का कसूर ज्यादा होता है, ऐसे मौके पर ऐसी भी कोई कोई

ननद देखी गई हैं जो माता का पक्ष छोड़ कर भौजाई ही की तरफदारी करती हैं। रामापुरे के रामचन्द्र जौहरी की बेटी गिन्दी की बात तो याद है न ? गिन्दी की माँ से और उसकी भौजाई से घनघोर लड़ाई हो रही थी। उन्होंने अपनी चिल्ली पुकार और गाली-गलौज से सारा मुहल्ला सिर पर उठा रक्खा था। ज्यों त्यों करके जब लड़ाई बन्द हुई तो गिन्दी ने कैसी खरी खरी बातें अपनी माँ को सुनाई थीं। माँ गिन्दी पर बिगड़ पड़ी. बोली—मैंने अपनी कोख में साँपिन को पाला था, वह उसे मनमाना कोसने लगी,—सुन सुन कर गिन्दी रोने लगी। बहुधा रामचन्द्र के घर ऐसा हुआ करता है। पर गिन्दी कभी न्याय को छोड़ कर माता का पक्ष लेकर बहू से नहीं लड़ती। जिस तरह माँ बाप पर श्रद्धा होनी स्वाभाविक बात है, उसी तरह न्याय और सच्ची बात पर श्रद्धा होनी स्वाभाविक है। वरन् माँ बाप का आदर कुछ कुछ व्यौहार की बात समझी जा सकती है। जहाँ माता सन्तान का पालन पोषण नहीं करती, पिता संतान से लाड़-प्यार नहीं रखता, ऐसी जगह सन्तान का भी माता पिता से प्रेम न होना स्वाभाविक बात है। परन्तु चाहे कोई कैसी ही दशा में क्यों न हो, शिक्षा और संगत जो बिलकुल ही बिगड़ी हुई न हो तो न्याय की ओर उसका मन आपही आप ज़रूर दौड़ने लगेगा।

स्त्री—जो ऐसा ही हो तो मैं अच्छा वर्त्ताव चाहे करूँ चाहे न करूँ, ननद मेरा दुःख क्यों नहीं समझेगी ?

स्वामी—(हँस कर) तुम उसके साथ भला वर्त्ताव नहीं करोगी तब भी वह तुम्हारा दुःख समझेगी ?

स्त्री—क्यों नहीं समझेगी ? क्या वह न्याय का पक्ष नहीं लेगी ?

स्वामी—अच्छी कही ! जब कभी तुमको दुःख होवे, क्या यही समझ लेना चाहिए कि अन्याय ही से तुमको दुःख मिल रहा है ? जो तुम आपही अन्याय करके दुःख पाओ, अन्याय करके सास से लड़ कर ननद का सहारा माँगने लगो—तब भी भला ननद तुम्हारा दुःख बटा लेगी ?

स्त्री—तब तुम क्यों कहते हो कि अच्छे वर्त्ताव से सब ननद ही दुःख में साझीदार हो जाती हैं ?

स्वामी—मैं ठीक तो कहता हूँ। न्याय की ओर मनुष्य की चाहे जितनी स्वाभाविक श्रद्धा क्यों न रहे, अच्छे वर्त्ताव से वह दूसरों को इतना अपने वश में कर सकता है कि उस समय न्याय पर की स्वाभाविक श्रद्धा भी हट जाती है। अपने प्यारे का दोष देखना कितने न्यायी मनुष्यों काम है ? रात दिन इस बात के दृष्टान्त देख रही हो, तब भी तुम इसे नहीं समझतीं ? अच्छे बर्त्ताव से बाघ भालू सरीखे जंगली जानवर तक हिल जाते हैं। और तुम अपनी ननद को नहीं मना सकोगी ?

स्त्री-यह सच बात है कि बाघ भालू भी हिल जाते हैं, पर क्या वे सहज में हिलते हैं ?

स्वामी-काम सहज है या कठिन है, पहिले ही से जो इसका हिसाब जोड़ने लगता है वह उस काम को पूरा नहीं कर सकता। देखना चाहिए, यह काम हो सकता है या नहीं, जो वह साध्य हो तो उससे जो मुँह फेर लेता है वह आदमी ही नहीं है।

स्त्री—और जो साध्य न हो, तब तो कोई उसे न
करना चाहेगा।

स्वामी—साध्य असाध्य की बात जो मैंने कही है, व
किसी एक मनुष्य के साध्य असाध्य की बात नहीं है।
यही होता, तो असाध्य समझ कर लोग बहुत से कामों
जी चुरा कर बैठ जाते। मेरे कहने का असली मतलब यह
कि आदमी जब किसी काम के करने का यत्न करता है
वह साध्य ही कहा जाता है। और जो काम नहीं स
सकता, उसीको असाध्य कहते हैं। तुमने ननद को हौ
समझ रक्खा है। तुम्हारी बुआ तुम्हारी माँ की ननद हैं
देखो तो सही, दोनो में कैसी प्रीति है। जब तुम्हारे बा
तुम्हारी माँ से किसी काम के बिगड़ जाने पर नाराज़ हो
हैं, तब देखा गया है कि बुआ जी उस दोष को अपने ऊपर
लिया करती हैं। जिसके अपने ही घर में ऐसे अच्छे दृष्टा
हैं, वह पराई बात सुन कर अपने मित्र को शत्रु समझना क
सीखती है? ननद है पति की बहिन। जो स्त्री उसे हौ
समझती है वह आपही हौआ है। जो पत्नी सब तरह
पति को सुख देना चाहती है, उसको बड़ी सावधानी
अपने पति के भाई, बहिन, माँ, बाप और दूसरे परिजनों क
सुखी रखने का यत्न करना चाहिए। पति की बहिन क
हौआ समझोगी, पति की माता को डाइन कहोगी, तब
तुम्हारा पति मारे आनन्द के फूला न समावेगा।

स्त्री—मालूम होता है कि मुझको विदा कराके ले जाओगे
इसीसे इतनी बातें बना रहे हो।

स्वामी—ज्यादा तो मैंने कुछ भी नहीं कहा है--पति के गृह में पत्नी का क्या धर्म है, उसे क्या करना चाहिए, यही मैंने कहा है। थोड़ा सा अच्छी तरह और पढ़ना सीख लो, मैं एक दिन तुमको "शकुन्तला" पढ़ कर सुनाऊँगा। शकुन्तला तपोवन की लड़की हैं सब गुणों की खानि वही तपोवन को सूना करके पति के घर जा रही है। उसका जाती हुई देख कर तपोवन में सन्नाटा छा गया है, प्यारी सखियाँ प्रियंवदा और अनसूया पास खड़ी खड़ी धीरे धीरे आँखों से आँसू बहा रही हैं महामुनि कण्व जी शान्तभाव से बैठकर शकुन्तला को उपदेश दे रहे हैं। किस तरह सास-ससुर की सेवा और भक्ति करनी होती है, किस काम के करने से वह अपने पति को आनन्द दिला सकती है, गृहस्थी में जा कर कर्त्तव्य का–अपने धर्म का–बोझा जब सिर पर लद जाता है, तब सावधानी के साथ किस तरह अपने धर्म को निबाहना पड़ता है—ऐसो ही बहुत सी बातें—कितने ही उपदेश वह दे रहे हैं। महामुनि कण्व जी भी सब बातें नहीं बता सके, इसलिये उन्होंने शकुन्तला को गौतमी से उपदेश लेने को कहा था। देखो, एक दिन शकुन्तला में से वह कथा पढ़कर मैं तुमको सुनाऊँगा, उससे बहुत सो बातें तुम जान जाओगी। ससुराल में गृहस्थी सँभालने के लिये स्त्रियों को बड़ी शिक्षा का प्रयोजन होता है।

स्त्री--तो मुझे लिवा ही जाओगे ?

स्वामी--हाँ, लिवा जाऊँगा। अपना घर द्वार भी तो अब तुमको सँभालना चाहिये। पर देखना, आज को बातें गाँठ बाँध लेना।

स्त्री—तुम न बताते तो क्या मैं इन बातों को नहीं जा सकती ? दो बार तो मैं तुम्हारे यहाँ हो आई हूँ, क्या क सास ससुर के सामने मेरे मुँह से कोई बात निकली है ?

स्वामी—सो तो मैंने नहीं सुना है, पर ऐसा मौन सा लेना भी तो अच्छा नहीं है। तुम अभी कह रहीं थीं कि बाप और सास ससुर में कुछ अन्तर नहीं है। तब बताओ तो, क्या माँ बाप के सामने बोलती हुई तुमको लाज आत है ? फिर सास ससुर के सामने क्यों इतनी सकुचा जात हो ? माँ से जिस तरह बोलती चालती या किसी चीज़ क माँगती हो, सास से वैसा क्यों नहीं करतीं ? हाँ, अपन माता की तुम जितनी भक्ति करती हो, सास की भी उतन ही जरूर करती हो, पर अपनी माँ से अपना सुख दु जितना निडर हो कर कहती हो, सास से वैसे क्यों नह कहतीं ?

स्त्री—अच्छा, अच्छा, मैं समझ गई, तुम मुझे मेम साह बनाना चाहते हो ?

स्वामी—नहीं जी नहीं, यह अंग्रेज़ी चाल नहीं है, यह देशी चाल ही है।

स्त्री—हाँ, हाँ, कहाँ देखा है कि कल की व्याही बहू अपने सास ससुर के साथ निडर होकर बोला करती है।

स्वामी—देखा तो नहीं है। पर वे क्यों नहीं बोलती हैं सो जानती हो ?

स्त्री—इसमें जानने और न जानने की कौन सी बात है ? इस तरह बोलने की रीति ही नहीं है इसीसे कोई नहीं बोलती।

स्वामी--कोई रीति नहीं है ?

स्त्री—सो तो मैं नहीं जानती।

स्वामी--यही जानतीं तो मेरे साथ इतना बकवाद न करतीं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि बड़ों के सामने बहुत देर तक नहीं रहना चहिए। क्या जाने किसी बात में, किसी काम में, कहीं उनका अनादर न हो जावे। तुम लोग जो बोलती नहीं हो उसका भी यही कारण है। सास, बड़ी ननद या दूसरी बड़ी बूढ़ियों से बोलने में कहीं मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जावे जिससे उनका अनादर हो। कहीं किसी दिन उनके सामने मुँह खोल कर लड़ाई न कर बैठो, इसी से ऐसी रीति है। जब ये लोग किसी बात से नाराज़ हो जावें या धमकाने लगें, उस समय कुछ न बोल कर चुप रहना ही ठीक है क्योंकि इससे झगड़े का डर नहीं होता। गुस्से का मौका इसी तरह टल जावे तो फिर कुछ डर नहीं रहता। इतनी बातें देख सुनकर बहुत विचार के पीछे, यह रीति चलाई गई थी। समझीं ?

स्त्री समझी। पर इससे तो मेरी ही बात रह गई। फिर कैसे कह रहे थे कि सास से अच्छी तरह बोलती क्यों नहीं ?

स्वामी—नहीं बोलना ही अच्छा है, पर उसके लिये जिसने शिक्षा नहीं पाई है, जो बेसमझ है। तुमको वैसा मैं नहीं देखना चाहता हूँ। मेरी इच्छा कि जिसे अम्मा कहोगी जिसे बहिन के बराबर समझोगी, उसके साथ वैसे ही वर्त्ताव भी किया करो तब तो लड़ाई झगड़े का डर नहीं रहेगा। और जब चुप रहने का कारण भी समझ में आ गया तब

बोलने में भी क्या डर है। असली बात मन में बनी र
इतना ही बहुत है।

स्त्री—अच्छा, उनके साथ बोलने में लोग क्या निन्द
नहीं करेंगे?

स्वामी—जो और कोई बात तुम निन्दा लायक नहं
करोगी तो इतने के लिये कोई निन्दा नहीं करेगा।

स्त्री—और कौन कौन सी बातों से निन्दा हो सकती है?

स्वामी—निन्दा होने की बहुत सी बातें हैं। अपने ही
मन की बात करना, कहना न मानना, वेहयापन, डाह
जलन, आलकस,—और कितनी बातें बतलाऊँ। झगड़े फसाद
की जड़ भी तुमही लोग हुआ करती हो। तुमही लोग
भाईयों में फूट करवा दिया करती हो। 'मेरा पति कमासुत
है, तेरा तो बैठे बैठे खाया करता है। मैं तो दिन भर काम
करते करते पिसी जाती हूँ और वह बैठी बैठी गुलछर्रे उड़ा
रही है'—इसी तरह की ओछी ओछी बातों को मन में जमा
देने से भाईयों के अन्तःकरण में जन्म भर के वैर के बीज
तुम ही सब बो दिया करती हो। सोच कर तो देखो, जहां
कहीं भाई भाई में भेद है, उसकी जड़ में स्त्रियों की उत्तेजना
को छोड़ कर और भी कोई बात रहती है? यह देखो, तुम्हारी
छोटी भौजाई ने आज माँ जी से कैसा आचरण किया है।
कुछ दिन पीछे वह बड़ी दुलहिन से भी ऐसा ही करेगी।
फिर तुम्हारे भाई वैसे ही हैं, दोनो अपनी अपनी स्त्रियों का
पक्ष ले कर आपस में लड़ेंगे। अन्त में उनको अलग होना

पड़ेगा, और यह घर बरबाद हो जायगा। देखो तो सही, स्त्रियों की डाह कितनी बुराई की जड़ है।

स्त्री—तुम बात बात में छोटी बहू के साथ मेरी बराबरी क्यों करते हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

स्वामी–बिगाड़ा कुछ भी नहीं है। पर बिगाड़ने के पहले भले बुरे का विचार सीख रखना अच्छा है या बुरा?

स्त्री–(चुप)।

स्वामी—सास ससुर को माँ बाप की तरह मानना, बड़ी ननद, छोटी ननद, देवरानी जेठानी को बड़ी छोटी बहिनों की तरह देखना। इन से कभी भूल कर भी राग, द्वेष, डाह, या हठ मत करना। तभी तुमको गृहस्थी में सुख मिलेगा। जिस की स्त्री डाह में डूबी रहती है उसके स्वामी से बढ़कर अभागा दूसरा कोई नहीं होता। जिस घर में सदा ईर्षा-द्वेष, खींचा-तानी, लड़ई-झगड़े रहा करते हैं, उस घर से लक्ष्मी बिदा हो जाती हैं, सुख जाता रहता है।

———

आपस का बर्त्ताव

स्त्री--राम करे नित्य ऐसा ही हुआ करे !

स्वामी—कैसा हुआ करे ?

स्त्री—नित्य इसी तरह से गाड़ी छुट जाया करे तो अच्छा हो। न गाड़ी छुट जाती न तुम फिर मेरे पास लौट कर आते। इधर मन ही मन घबरा कर मैं आधी हुई जाती थी।

स्वामी—क्या तुम मुझे इतना चाहती हो ?

स्त्री—हाँ जी ! ठीक कहते हो ! मैं चाहती थोड़ा ही हूँ। तुम आप जैसे निठुर हो, वैसा ही औरों को भी समझा करते हो।

स्वामी—ऐसी बात मत कहो। मान लो कि कोई तुम्हारे साथ निठुराई ही करता है। पर तुम जो उसके साथ दया का वर्त्ताव न छोड़ोगी तो वह कब तक तुमसे निठुराई कर सकेगा ? इस संसार में वर्त्ताव ही सब कुछ है। अच्छे वर्त्ताव से पराया अपना बन जाता है, और बुरे वर्त्ताव से अपना भी पराया हो जाता है।

स्त्री—मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम मुझे इस तरह से उलाहना दे रहे हो ? क्या मैंने कभी तुम्हारे साथ कोई बुरा वर्त्ताव किया है ?

स्वामी- तुमने मेरे साथ कभी कोई बुरा वर्त्ताव नहीं किया है, इसलिये मैं उलाहना नहीं देता हूँ। मैं कहता हूँ कि आपस में वर्त्ताव के ढंग सीखना बहुत ही जरूरी बात है। छोटे बड़े सब तरह के मनुष्यों के मेल को समाज कहते हैं।

मनुष्य सामाजिक जीव है। समाज ही के लिये मनुष्य है। वह जब जगत में आया था तब वह कुछ भी नहीं जानता था। फिर बड़ा होकर उसने सब कुछ सीखा, सब कुछ जाना। समाज उसकी सहायता न करती तो मनुष्य अपनी रक्षा आप किस तरह कर सकता था? मनुष्य के अभाव बहुत हैं। उस की ज़रूरत की बातें बहुत हैं। अपने सब अभावों को पूरा करके उसे रहना सहना पड़ता है। उसे दूसरे की सहायता न मिले तो उसकी ज़रूरत की बातें एक भी पूरी नहीं हो सकतीं। आदमी ही के मेल से वह आदमी बनता है। इसलिये जब किसी ज़रूरत में दूसरे मनुष्य की सहायता लिये विना तुम्हारा काम नहीं चलता, तब उन सब मनुष्यों को तुम अपना कैसे बना सकोगी, किस गुण से तुम काम लगते ही उनकी सहायता पा सकोगी, इसीके लिये बर्त्ताव या रहन सहन के गुण तुमको सीखने चाहिएँ। सब मनुष्य एक दुसरे के सहायक हैं। इसलिये कैसे बर्त्ताव से तुम्हारी सहायता करने वाला तुमसे प्रसन्न रहेगा, किस आचरण से तुम मनुष्य मात्र को प्रसन्न रख सकोगी, ऐसी शिक्षा तुमको मिलनी चाहिए। बर्त्ताव ही से शत्रु और मित्र दोनो पैदा होते हैं।

स्त्री—किसके साथ किस ढंग का बर्त्ताव करना चाहिए?

स्वामी—इस विषय पर सब बातें कही जावें तो एक बड़ा भारी पोथा बन जाय। मोटी तौर पर जान रक्खो, तुम आप जिस तरह का बर्त्ताव चाहती हो, औरों के साथ तुमको भी वैसा ही बर्त्ताव करना चाहिए।

स्त्री—बाप, माँ, सास, ससुर, क्या सब ही के लिये
नियम है ?

स्वामी—हाँ, यही है। पर इतना ही अन्तर है कि
बड़ा है वह प्यार करेगा, जो छोटा है वह सेवा और भ
करेगा। जो तुम माता पिता से प्यार कराने की इच्छा रख
हो तो तन मन से उनकी सेवा और भक्ति करो। भाई ब
के लिये भी यही नियम है। ससुराल में किसके साथ
बर्त्ताव करना चाहिये, सो मैं कल कह चुका हूँ, भूल
जाना। अपने नातेदार, पड़ौसी, नौकर चाकर, सबके
यही एक नियम है। जिससे आदर पाने की इच्छा रखती
पहिले तुम उसका वैसा ही आदर करो। दास दासी
इज्जत-सम्मान पाने की इच्छा होवे तो उन लोगों पर
ममता करना सीखो। इस बात को पक्की जानो, जो
अच्छा बर्त्ताव करोगी तो—वह चाहे लाख खोटा क्यों
हो—वह कभी तुमसे नाराज़ नहीं रह सकेगा। आदर से
पत्ती तक भी वश में आ जाते हैं, आदमी की तो बात
क्या है। पराए दुःख को समझने की चेष्टा सब समय कर
रहना। दूसरे की दशा में अपने को फँसा हुआ समझो
तो सहज ही में उसका सुख दुःख तुम्हारी समझ में
जावेगा। एक बार जान लोगी कि उसे दुःख है तो—
लोगों का स्वभाव दयालु हुआ ही करता है—तुरन्त उसक
दुःख मिटाने को तुम्हारा जी चाहेगा। इसी ढंग से परा
दुःख से दुःख मानने और दया करने का अभ्यास धीरे धी
बढ़ने लगेगा। शास्त्र कहता है कि जो पराए दुःख को

करने की चेष्टा करता है, ईश्वर उसका दुःख दूर करता है। और यह मत सोचना कि किसीके दुःख दूर करने में तुमको दुःख ही मिलता है। परोपकार से मन में एक ऐसा सुख मिलता है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इन सब बातों को अभी तुम नहीं समझ सकोगी। इतना ही याद रक्खो कि पराए दुःख को मिटाने की चेष्टा करने से अपना दुःख आप से आप दूर हो जाता है।

स्त्री—जो मेरा आदर नहीं करता, मेरे दुःख से दुःखी होना तो दूर रहा, मेरा विश्वास तक नहीं करता, बताओ तो, उसका आदर मैं कैसे कर सकती हूँ?

स्वामी—ऐसा नहीं कर सकीं तो तुम्हारी बड़ाई ही क्या हुई! जो तुम्हारा आदर करता है उसका आदर करना और कुछ न हो सके तो उसके साथ अच्छा वर्त्ताव रखना, यह तो बिलकुल सहज बात है। शत्रु ही का आदर न कर सकीं—जो तुमको घृणा करता है उसीसे प्रीति न कर सकीं—तो तुम्हारे मन की उदारता कहाँ रही? देखो किसी ने कहा है, "जो तोकू काँटा बुवै ता बोउ तू फूल।" क्या तुम्हें याद नहीं है, उस दिन अम्मा जी कह रहीं थीं "कर भला, हो भला, अन्त भले का भला"। ईसाई पादरी कहा करते हैं—"जो तुम्हारी बाएँ गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी ओर अपना दाहिना गाल भी कर दो।" यही तो असली उदार हृदय वाले का काम है—सच्चे प्रेम का वर्त्ताव है। ईश्वर को देखो, वह हम लोगों पर कितनी दया रखते हैं, हमारे सुख चैन के लिये कैसी कैसी चीज़ें दिया करते हैं।

क्या वे चुन चुन कर किसीको कोई चीज़ देते हैं। भले।
सभी को पालन करना उनका काम है। ईश्वर से सच्ची प्री
और परोपकार का दृष्टान्त लेना चाहिए। और जिस त
के लोगों को तुम कहती हो कि तुम प्यार नहीं कर सक
देखना वे लोग फिर ऐसे नहीं रहेंगे।

स्त्री—(चुप)।

स्वामी—क्यों, तुम तो चुप हो रहीं! मेरी बात अच
नहीं लगी?

स्त्री—चुप न रहूँ तो भला और क्या करूँ। कहने को
तुमने बहुत सहज में कह डाला, पर करना इसका इत
सहज नहीं है।

स्वामी—गुणवती के लिये करना भी सहज हो जाता है
स्त्री—मेरे गुण की बात इसमें क्या है? हो रही
बर्त्ताव की बात, आपने बाँध दिया इसमें गुण का पुँछल्ला
और मैं ही तो तुम्हारी बड़ी भारी गुणवती हूँ न?

स्वामी—(आश्चर्य से) यह क्या कह रही हो? तब क
तुम मेरी बात को नहीं समझ सकीं?

स्त्री—नहीं, मैंने कुछ समझा थोड़े ही है? न जाने तुम
कहाँ से ऐसी विद्या सीखी है कि किसीके समझ ही
नहीं आती!

स्वामी—मैं सच कहता हूँ, तुमने "गुणवती" का मतल
ही नहीं समझा है। बताओ तो "गुणवती" किसको कहते हैं?

स्त्री—जो बेल बूटे काढ़ना और मोज़े गुलूबन्द बुनन
जानती है। बड़ी कठिन बात मुझसे पूछी है न? तुम त
आदमियों में भी मेरी गिनती नहीं करते हो, है न ठीक?

स्वामी—वाह! कैसी अच्छी समझ है! पर तुम्हारा क्या दोष है। आज कल तो तुम लोगों में मूर्खता ही भरी हुई है। गुण का अर्थ दो चार सुई के काम जानना और शिक्षा का अर्थ दो एक पन्ना पढ़ लेना ही है। नहीं, नहीं, गुणवती का अर्थ जो तुमने लगा रक्खा है, ठीक उतना नहीं है।

स्त्री—तब और क्या है?

स्वामी—बिनय, लज्जा, भक्ति, दया, आदि कई अच्छे धर्मों को जो जानती है उसीका नाम गुणवती है। जो तुमने कहा है वह भी एक तरह का गुण ज़रूर है, पर वह हाथ का गुण है, स्वभाव का नहीं है। लज्जा नम्रता, दया, प्रेम, भक्ति, ऐसे कई गुण ही स्वभाव के गुण हैं। और तुमने जिस गुण की बात कही है, वह सीखने से आता है। मैं जिन गुणों की बात कह रहा हूँ वे सब स्त्रियों के गुण हैं -स्त्री ही क्यों सब मनुष्यों के हैं—ये गुण थोड़ा बहुत सबों में रहा करते हैं। गुणवती बनने का मतलब यह है कि इन गुणों को अपने सब कामों में पूरी तरह से दिखला सके। जो उनको जितना काम में ला सकती है, वह उतनी ही गुणवती होती है। एक बात कहने से रह गई है। सब ही गुणों को दिख-लाने की ज़रूरत नहीं है। गुण तो भले भी होते हैं और बुरे भी होते हैं। क्रोध इत्यादि गुण अवगुण हैं। इनको दबा कर अपने बस में रखना और अच्छे गुणों को पुष्ट करना ही सच्ची गुणवती का काम है। मेरी राय में एक बात और भी है। स्वामी के जो जो गुण पूरे नहीं देख पड़ते या फूलों की

कलियोँ की तरह अधखिले जान पड़ते हैँ, स्त्री को चाहिए कि अपने चरित्र मेँ सबसे पहिले उन्हीँको काम मेँ लावे। नारी पुरुष की आधी है। जो गुण पुरुष मेँ नहीँ हैँ, वे नारी मेँ होवेँ तो दोनो मिल कर बहुत अच्छे काम कर सकते हैँ। स्वामी के गुण की कमी स्त्री के गुण से पूरी हो सके तो दोनो का मेल बहुत सुघर देख पड़ता है। साहस के साथ कोमलता, आकांक्षा वा इच्छा के साथ सन्तोष, बड़े पेड़ मेँ लिपटी हुई फूलोँ की लता, बादल के पीछे बिजली आदि मेँ जैसी सुन्दरता मालूम होती है, वैसी दूसरी जगह नहीँ देख पड़ती। जाने दो, मोटे तौर पर आज थोड़े से गुणोँ की बात कहने को जो चाहता है। मैँ पहले ही कह चुका हूँ कि हम लोगोँ मेँ बहुत से स्वाभाविक गुण हैँ। उनमेँ से चुन कर जो अच्छे हैँ उन्हीँको बढ़ाना चाहिए और जो अवगुण हैँ उनको दबाना या ज़रूरत पड़े तो बहुत थोड़ी मात्रा मे उनको अच्छा गुण बना कर मौके पर दिखाने की चेष्टा करनी चाहिए। कोई गुण बेफ़ायदे नहीँ बनाया गया है। जिनको हम अवगुण समझते हैँ, उनको भी हम उचित मात्रा मेँ काम मेँ ला सकेँ तो वे बुरे नहीँ रहते। दृष्टान्त दे कर तुमको समझाए देता हूँ। जिनको हम अच्छे गुण कहते हैँ, उनमेँ से लज्जा, नम्रता, प्रीति, अपने को रोकना (आत्म संयम), सत्य बोलना, सन्तोष और पवित्रता, ये सबसे बड़े हैँ। इनको तो पूरी तरह से पुष्ट करना चाहिए। और जिनको दबा रखना चाहिए उनमेँ से पराई भलाई देखकर कलेजे मेँ डाह होना, क्रोध, अभिमान, लोभ, अपना ही मतलब देखना, ये प्रधान हैँ। और जो गुण

तुमको सीखने चाहिएँ उनमें से आपस का रहन सहन, दूसरे के साथ वर्त्ताव, सन्तान पालन, रसोई, शिल्पकला, सँभाल कर धन का रखना और खर्च करना, कुल का धर्म, सफ़ाई आदि बड़े हैं। मोटी तरह से इतना ही जान रक्खो। धीरे धीरे इन सबों की बात मैं तुमसे कहूँगा।

स्त्री—एक दमसे इतना मत कह डालो। कहना हो तो धीरे धीरे अच्छी तरह से समझा कर कहो, नहीं तो तुम्हारी एक भी बात मैं नहीं सुनूँगी। इतनी उलझन डाल कर कहोगे तो भला मेरी समझ में कैसे आवेगी?

स्वामी—अच्छा ऐसे ही सही। पहिले नम्रता की बात कहता हूँ। लज्जा और नम्रता स्त्रियों के गहने हैं। इनके होने से वे जितनी सुन्दर लगती हैं, वैसी और किसी बात से नहीं लगतीं। जिस स्त्री को लज्जा नहीं होती, वह स्त्रियों के नाम पर कालख चढ़ाती है। उसको पल पल में आपत्ति में फँसना पड़ता है। लज्जा तुम लोगों को सुन्दर ही नहीं बनाती है, उससे और भी बड़े बड़े फ़ायदे होते हैं। मान लो कि तुम को एका एकी बहुत धन मिल गया, दास दासी, किसी बात की कमी न रही; जी चाहे तो दर्पण में अपना मुख देख देख कर ही सारा दिन बिता दो; पर जो तुमको लज्जा होगी, ज्ञान चाहे न भी हो, तो तुम ऐसा नहीं करोगी। सज धज और ठाट बाट से रहने में तुमको लज्जा आवेगी। लज्जा तुम्हारे मन में धन का गर्व और झूठा अभिमान नहीं आने देगी। बहुत मौकों पर लज्जा ही बुरी राह में पाँव धरने से तुम को रोक देगी।

स्त्री—बहुत अच्छा, आज से तुम को देख कर मैं घूँघट काढ़ लिया करूँगी। तब तो तुम्हारे मन की बात हो जायगी ?

स्वामी—यह देखो – सब बातों में मूर्खता ! क्या मैं तुमको घूँघट काढ़ कर लज्जावती बनने को कहता हूँ। रहने दो झूठ मूठ बक बक करके क्या होगा ?

स्त्री—नहीं, नहीं, तुम कहो। मैंने तुमको चिढ़ाने के लिये ऐसा कहा था। ख़फ़ा मत हो। तुम ज्ञान की बातें कह रहे हो ज्ञान के दर्पण पर क्रोध की परछाईं कैसी लगेगी यही देखने के लिये मेरा जी चाहता था। इसीसे कभी कभी मैं तुमको चिढ़ा दिया करती हूँ।

स्वामी—जाने दो। लज्जा और नम्रता की बात मैं कह चुका हूँ। अब प्रीति की बात कहता हूँ। इसी एक प्रीति में दया, भक्ति, प्यार, किसीके दुःख में दुःख मानना (जिसका नाम सहानुभूति है) ये सभी बातें आ गईं। बात तो सब एक ही हैं. सिर्फ समय और पात्र के अनुसार उनका नाम अलग हो जाता है। अब मेरी बात समझनी हो तो प्रीति का ओछा मतलब भूल जाओ। मैं जिस प्रीति की बात कह रहा हूँ वह सब गुणों में, सब धर्मों में बड़ी है। छोटी सी चींटी से लेकर भगवान तक का प्रेम इसीमें आ गया। मन का ऐसा सुन्दर भाव दूसरा और नहीं है। जो असल में प्रेमी है वह सब गुणों से भूषित देवता है। प्रेम ओछे स्वार्थ का नाश कर देता है, प्रेम हृदय में क्षमा ले आता है, प्रेम से मनुष्य अपने मन को रोक रखना (आत्म संयम) सीखता है,

प्रेम से सन्तोष आता है, प्रेम ईश्वर की भक्ति दिलाता है, प्रेम अन्तःकरण को स्वर्गपुरी बना देता है। चैतन्य जी ने प्रेम की शिक्षा दी थी इसीसे वह आज भी पूजे जाते हैं। बुद्ध जी ने प्रेम की शिक्षा दी थी इसीसे वह ईश्वर का अवतार गिने जाते हैं। मैं प्रेम के गुण की बात पूरी तरह से कह सकता तो शायद अकेले प्रेम की शिक्षा ही से सब काम पूरा हो जाता। आज तुमने जन्म लिया है, तुमको पल भर भी जीते रहने की शक्ति नहीं है—किसने सैकड़ों दुःख झेल कर तुमको पल पल की आपत्ति से बचा रक्खा है?—प्रेम ने। आज तुम बड़ी हो गई हो, आप सब काम कर सकती हो, संसार के दुःख-यातना से भरे हुए महा नरक में कौन तुमको बाँधे हुए है? प्रेम। आज किसी रोग से दुःखी मनुष्य को देख कर तुम्हारी आँखों से आँसू की धारा क्यों बह निकलती है, तन मन धन से तुम क्यों उसे आराम करने में लग जाती हो? प्रेम के लिये। आज एक भूखा अतिथि तुम्हारे घर पर आता है तो उसकी सेवा के लिये क्यों दौड़ती हो? प्रेम ही के लिये। धर्म करो, पर उससे कुछ फल पाने की कामना मत करो। इस निष्काम धर्म की शिक्षा प्रेम को छोड़ और कोई नहीं सिखला सकता। प्रेम का साधन किया जावे तो ज्ञान ध्यान सब आप ही आ जावेंगे। ज्ञान और प्रेम में बहुत अन्तर है। ज्ञान कठोर है, प्रेम कोमल है। ज्ञान होने पर प्रेमी होना उचित जान पड़ता है परन्तु सब ज्ञानी प्रेमी नहीं बन सकते। असली प्रेम होवे तो ज्ञान आपसे आप आ जाता है। पर ज्ञान की एक ऐसी ऊँची जगह है

जहाँ ज्ञान और प्रेम दोनो मिले हुए देख पड़ते हैं। प्रेम जि ज्ञान को सिखाता है वह कभी कभी भ्रम पूर्ण होने पर बहुधा अच्छा फल देता है। जो मनुष्य जहाँ तक इस प्रे गुण के ओछेपन को छोड़ कर उसकी बढ़ती कर सकता वह उतना ही देवता बन जाता है। इस गुण को पुष्ट करो तब फिर यह नहीं कहना पड़ेगा कि अतिथि का आदर करो रोगी की सेवा करो, ईश्वर की भक्ति करो, इत्यादि।

स्त्री--कोई अकेला प्रेमी बन सके तो सब कुछ बन सकता है; तब दूसरे गुणों का नाम क्यों लेते हो?

स्वामी— लेता हूँ, उसके भी बहुत कारण हैं। एक तो प्रेम का वह सुन्दर उदार भाव समझाना कठिन है, तिस पर समझाना पड़ता है तुमको। तुम ऐसी प्रेमी बन सकोगी, इसकी भी कुछ आशा नहीं है। इसलिये सब बातें थोड़ी थोड़ी सी कह देनी चाहिए। समझा?

स्त्री—समझा कि प्रेम के बराबर दूसरा गुण और नहीं है। पर एक बात है। तुमने कहा है कि निष्काम-धर्म की शिक्षा प्रेम छोड़ दूसरा कोई नहीं सिखला सकता। इससे क्या मतलब है? इसे मैं बिलकुल नहीं समझी।

स्वामी—बताओ तो, भूखे को तुम अन्न क्यों देती हो? रोगी की तन मन से सेवा क्यों करती हो?

स्त्री—धर्म के लिये करती हूँ। सुना है, वैसा करने से पुण्य होता है। पुण्य करने से परलोक में सुख मिलता है।

स्वामी—देखो, यह धर्म निष्काम-धर्म नहीं है। उस धर्म से तुम परलोक में सुख की कामना रखती हो, इससे यह

निष्काम नहीँ हुआ। अच्छे कामोँ मेँ इस तरह की कामना का रहना अच्छा नहीँ है। पर आज जो तुम सच्ची प्रेमी होतीँ तो तुम्हारे मुख से मैँ कुछ और ही उत्तर सुनता।

स्त्री -क्या ?

स्वामी—तब तुम कहतीँ कि "ऐसा करने को जी चाहता है इसी लिये मैँ करती हूँ। उन लोगोँ का कष्ट देख कर मेरे मन मेँ दुःख होता है, इस लिये करती हूँ। ऐसा बिना किए मुझसे नहीं रहा जाता।"

स्त्री—तब क्या उस काम से पुण्य नहीँ होता ?

स्वामी—पुण्य नहीँ होता कौन कहता है ? जो स्त्री रोगी के कठोर दुःख के समय, खाना पीना सोना भूल कर, अपने जीवन को तुच्छ समझ कर उसकी सेवा करती है, उससे बढ़ कर पुण्यवती और कौन है ? रोगी शरीर की पीड़ा से बिछौने पर पड़ा पड़ा छटपटा रहा है—मानो एक पल भी उसके जीने की आस नहीं है उसकी दोनो आँखों से आँसू की धारा बह रही हैँ,--उस समय—उस दारुण ज्वाला के समय-जब तुम लोग आँसू बहाती हुई, रोगी के मर जाने का डर मान कर, उसके पास बैठी रहती हो, तब सब बातोँ को भूल कर तुम लोगोँ ही को देखने को जी चहता है। परन्तु उस समय जो यह मालूम हो जावे कि अकले प्रेम से पराए दुःख से कातर हो कर तुम उस काम मेँ लगी हो, तब तो देवी समझ कर तुम्हारी पूजा करने की इच्छा होगी। निष्काम-धर्म ही सब धर्मोँ मेँ श्रेष्ठ है। जिसमेँ इस लोक और

परलोक में सुख की कामना रहती है वह श्रेष्ठ धर्म नहीं है जाने दो—इन सब बातों को तुम अच्छी तरह नहीं समझ सकोगी। अब इसे छोड़ कर दूसरा विषय लेता हूँ।

स्त्री—बड़ी अच्छी बात है। हम लोग कहीं उतना समझ सकती हैं? गड़बड़ मचा कर हमें पागल मत बना देना। कुछ कहना हो तो सीधी बातों में कहो। अब और क्या कहना है?

स्वामी—अब सहलेने के गुण और क्षमा की बात कहता हूँ। संसार में आकर कोई जन्म भर सुख से काटने की आशा नहीं कर सकता। जन्म भर सुख भोगना किस के भाग में लिखा है? मन की सब आशाएँ किसकी पूरी हुआ करती हैं! यहाँ बहुत सहना पड़ेगा। प्रेम के बदले घृणा, उपकार के बदले गले पर छुरी, बड़ों का जरूरत से अधिक दण्ड देना इन सबों का यहाँ मिलना कुछ आश्चर्य नहीं है। सब समय सब दशा में धीरज धरना चाहिए। गृहस्थी में दुःख की आँधी जोर से बहने लगे तो कौन तुमको सम्हालेगा? अकेले दुःखही के समय सहलेने के गुण की जरूरत होती है, यह बात नहीं है। बहुधा ऐसा भी होता है कि किसी काम के करने में हम लोग बहुत जल्दी मचाने लगते हैं उसके पूरे न होने से मन में बड़ी बेकली होने लगती है। तब धीरज से उस उत्साह को दबा कर सहज में उस काम के करने का उपाय सोचना चाहिए। इस समय सह लेने के गुण की—सहन शीलता की—बड़ी जरूरत होती है। शरीर का बल असल

बल नहीं है, मन का बल ही बल है। दुःख आपत्ति चाहे कितनी ही भारी क्यों न हो, बिना घबराए मैं उसकी चोट को सह लूँगा, उसे रोकने का यत्न करूँगा, यही सच्चे बहादुर का मनसूबा होता है।

बहुधा किसी काम को छेड़ कर, उससे कुछ फल न मिलते देख कर हम लोग उस काम को छोड़ दिया करते हैं। यह बहुत नासमझी का काम है। किसान बीज बोने के साथ ही उसका फल चाहने लगें, और फल न मिलते देख कर अपना काम छोड़ देवें तो बताओ कैसा होवे? पढ़ने लिखने में भी तुम लोग ऐसी ही भूल कर बैठती हो। साल भर ही के भीतर तुम लोग पंडित बन जाना चाहती हो, और न बन सको तो पढ़ना लिखना बिलकुल छोड़ देती हो, क्या यह सहन-शीलता के न होने का फल नहीं है? एक दिन में कोई काम नहीं होता। भाप आसमान में चढ़ते ही पानी बन कर नहीं बरसने लगता। पेड़ लगते ही उसका फल नहीं मिलता—इस बात को सदा याद रखना। इस सहन-शीलता के साथ एक और बहुत बड़ा गुण मिला हुआ है। उसका नाम क्षमा है। क्षमा बहुत बड़ा गुण है। जो क्षमा करना और सह लेना जानता है उसके लिये संसार में सब समय सुख की ठंढक बनी रहती है। जिस नारी में ये दोनो गुण हैं, वह दस बीस मनुष्यों की गृहस्थी में भी क्यों न रहे, उसका किसी के साथ झगड़ा नहीं होता।

स्त्री—मैं मान लेती हूँ कि सहन-शीलता और क्षमा बहुत बड़े गुण हैं; पर बताओ तो किस तरह यह गुण आ सकते

हैं। अकेले लेक्चर न देकर काम की भी दो एक बातें बताओ।

स्वामी—सहनशील होने का एक बड़ा उपाय यह है कि इस सच्ची पुरानी कहावत को याद रक्खे—"सब दिन कभी एक से नहीं जाते"। इस बात को याद रखने से आपत्ति के समय तबियत नहीं घबरावेगी। जब बड़े दुःख की किरणों से शरीर झुलसने लगता है तब याद रखना चाहिये कि यह सूर्य साँझ होते ही छिप जायगा और तब फिर ठंढक आ जायगी। जब आपत्ति की आँधी हल चल मचा देगी, याद रखना कि यह आँधी थोड़ी देर में हट जायगी। फिर दुनिया में शान्ति हो जायगी, फिर सुख के वसन्त की सुगन्ध भरी बयार चलने लगेगी। दुःख की तरह सुख में भी सहनशील होना पड़ेगा। क्योंकि दुःख की तरह सुख भी बराबर नहीं ठहरता। आँधी के पीछे जैसे हलकी हलकी हवा चल सकती है, उसी तरह हलकी हवा के पीछे फिर आँधी आ सकती है। समझा?

स्त्री—और क्षमाशील होना?

स्वामी—वह भी उसी तरह पर है। जब कोई तुम्हारा कुछ अपराध करेगा, धीरज से सोच कर देखना कि तुमने भी कभी वैसा अपराध किया है या नहीं। बहुधा देखोगी, जिस बात के लिये आज तुमको क्रोध आ रहा है, ऐसे अपराध तुम सैकड़ों बार कर चुकी हो। और जो अपने ऐसे अपराध न भी मिलें तब सोचना कि तुम भी कभी आगे चल कर वैसा कर सकती हो या नहीं। और जिस अपराध के लिये तुम आज क्रोध कर रही हो, उसी तरह तुम पर भी कोई दूसरा क्रोध

करता तो तुमको कितना दुःख होता। जो आप क्षमा चाह सकती है, वह दूसरे को क्यों न क्षमा करेगी ? वर्त्ताव की बात तो हो ही चुकी है, कि दूसरे से जैसा वर्त्ताव तुम चाहती हो, वैसा तुम भी उसके साथ करो। अब तो समझीं ?

स्त्री—इस तरह समझाने से क्यों मैं न समझूँगी ?

स्वामी—अपने मन का रोकना-आत्म-संयम-भी ठीक इसी तरह का है। जो सह लेना नहीं जानता, क्षमा करना नहीं जानता, अपने मन को भी वह बस में नहीं रख सकता। और क्षमा की बात जो मैंने कही है, सच्चे प्रेमी के लिये वह बहुत सहज बात है। प्यारे के अपराधों को कौन क्षमा नहीं करता ? इसके पीछे सत्य बोलना है। जो क्षमाशील है, जो प्रेमी है, वह बहुधा झूठ भी नहीं बोलता। इस विषय पर मैं और क्या कहूँ। मेरे पास एक पुस्तक है, उसमें पति पत्नी की चिट्ठियाँ छपी हैं। लो उसी पुस्तक में से मैं एक चिट्ठी पढ़ कर तुमको सुनाता हूँ—

स्त्री—यह चिट्ठी स्त्री ने लिखी है या पुरुष ने ? भला ऐसी चिट्ठियों को भी कोई छपवा देता है। कैसी लज्जा की बात है ?

स्वामी - लज्जा की बात नहीं, इसमें ज्ञान की बातें भरी हुई हैं। सुनो तो सही। स्वामी लिखता है—

"प्यारी ! आषाढ़ सुदी चौदस की लिखी तुम्हारी चिट्ठी मिली। पढ़ कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। तुमने लिखा है कि छुट्टी नहीं मिलने से तुम मुझको पत्र नहीं लिख सकीं। मैं जानता हूँ, यह बात तुमने झूठ लिखी है।

'बात' से क्या मतलब है ? शब्दों की सहायता से मन के असली भावों का बताना—यही मतलब है न ? जिस शब्द से मन का असली भाव नहीं जान पड़ता, वह बात ही नहीं है। वह बेमतलब की बात है। ऐसी बेमतलब की बातें—ऐसे झूठे शब्दों के बोलने से क्या हानि है, तुम शायद ऐसा ही कहोगी। इसके उत्तर में मैं इतना कहूँगा कि उन शब्दों से सुनने वाले के मन में कोई झूठा विश्वास न जम जावे तो कुछ हानि नहीं है। जो तुम आगे भी किसी समय वैसी झूठी बात कह सको, और उससे झूठा गुमान न पैदा हो सके, तब तुमने आज मुझको जो झूठी बात लिखी है उससे बहुत हानि का डर नहीं है। क्योंकि अब मैंने उसका विश्वास नहीं किया है। पर मान लो, इसके बाद जो मैं तुम्हारी सब बातों को झूठा समझने लगूँ, उनका विश्वास न करूँ, तो क्या उससे तुमको सुख मिलेगा ? सुन्दर फूल के भीतर जैसे कीड़ा, स्त्री के मुख में झूठ भी वैसा ही लगता है। और कभी झूठ मत बोलना। इसकी ज़रूरत ही क्या है ? धमकाई जाने का डर ? मैं सौगंध खा कर कह सकता हूँ कि झूठ लिखने के बदले तुम सीधी तरह से लिख देतीं कि आलकस के मारे चिट्ठी नहीं लिखी थी, तो मुझको इतना दुःख न होता। तुम कह सकती हो कि मैं चाहे तुम्हारा तिरस्कार न करुं—दूसरे लोग तो कर सकते हैं ? इसके उत्तर में मैं कहता हूँ कि तिरस्कार का भ्रम कभी मत करना। अच्छे काम के लिये कोई तुम्हारा तिरस्कार भी करे तुमको धमकावे या तुमसे नाराज भी हो जावे—तो उसे चुपचाप सह लेना। सहन-शीलता की बात तो तुम जानती ही हो। और जो बुरा

काम करने के लिये तुमको दण्ड मिले तो मुलायमी से कह देना कि आगे फिर तुमसे ऐसा काम न होगा। कोई अपराध तुमसे हो भी जावे तो जी खोल कर कह देना कि यह मुझही से हो गया है। मनुष्य का मन बड़ा कमजोर होता है—जो उससे कभी कोई अपराध हो भी जावे तो कुछ अचरज की बात नहीं। तुम्हारे हर एक अपराध को पहली बार मैं क्षमा कर सकता हूँ।

सच बोला करो। हर एक बात कहने के पहले सोच लिया करो कि वह ठीक मन से निकल रही है या नहीं। मुख से कही हुई बात ही का सच होना यथेष्ट नहीं होता; बातों की मारपेंच से असली बात को छिपा रखना भी झूठ ही है। बहुधा तुम लोग बिना समझे बूझे ऐसा ही किया करती हो। मन की असली बात को छिपा कर किसी दूसरे ढंग से बोलना भी बुरा है। इसे शायद तुमने नहीं समझा होगा। मान लो कि मेरे बक्स में से तुमने रामदुलारी के हाथ से एक चाकू निकलवा लिया। तुम जानती हो कि मालूम होते ही मैं उसे लौटा लूँगा, क्योंकि ऐसे चाकू की ज़रूरत तुमको नहीं है। जब मैंने चाकू को ढूँढ़ा और न पाया तो मैंने पूछा "क्या तुमने मेरा चाकू लिया है?" तुम कहोगी, "मैंने नहीं लिया है।" तुम्हारा यह जवाब झूठ ही नहीं—कपट भरा भी है।

बहुत बातें मत कहा करो। थोड़ा बोलो। थोड़ा बोले बिना सत्यवादी बनना कठिन हो जाता है। मेरा यह मतलब नहीं है कि रात दिन तुम भारी बनी रहो करो। ऐसे लोग भी हुआ करते हैं, पर उनका सुभाव भी मुझको पसन्द नहीं

है। जिसके स्वभाव में सीधापन नहीं है, जो हँसमुख नहीं होती—वह अपने प्रिय जनों को आनन्द नहीं दिला सकती। जिसके स्वभाव में जितना सीधापन और आनन्द रहता है वह उतनी ही सब की प्यारी बन जाती है। सीधाई-सरलता—निर्मल आकाश में चाँदनी की तरह मनोहर लगती है, देखने से नेत्रों को तरावट मिलती है। पर यह स्वाभाविक होनी चाहिए; ऊपर से दिखावट के लिये सीधा बनना तो मिश्री की छुरी के बराबर हो जाता है। तुममें जितनी सरलता मौजूद है उसीको धीरे धीरे आपसे आप बढ़ने दो।

मैं अच्छी तरह से हूँ। यहाँ के समाचार सब अच्छे हैं। अपना कुशल मंगल लिखती रहना।"

स्त्री—इसमें नई बात और क्या लिखी है? कौन नहीं जानता कि झूठ बोलना बुरा है। पर जिसे तुम बातों की मारपेंच और छल कपट कहते हो उसे मैं इतना बुरा नहीं समझती थी। अब मैंने जान लिया कि बात जो बोली जावे वह मन के भीतर से सच्ची हुआ करे। मन में कुछ और ऊपर कुछ - यह बहुत बुरा होता है।

स्वामी—नई बातें सुनाने का वादा मैंने कब किया है? ये सब पुरानी हैं, और पुरानी होने ही से इनका इतना आदर है। जो बात युग युग से सच्ची मानी गई है, वह नई कैसे हो सकती है? तब भी तो इसमें से कुछ तुमको नया लगा है। बाकी को भी तुम पुराना समझती हो यह मैं कैसे जानूँ? जब तक मैं देखूँगा कि झूठ बोलने की आदत तुमसे नहीं छूटती, तब तक पुरानी होने पर भी इस बात को तुमसे नई की सी कहनी पड़ेगी।

स्त्री—क्या मैं तुमको मना करती हूँ। रोज साँझ सवेरे दस दस दफ़े कहा करो—"झूठ बोलना बुरा है", "झूठ बोलना बुरा है"।

स्वामी—हैं! इतने ही में ख़फ़ा हो गईं?

स्त्री—ख़फ़ा होने की कौन सी बात है? पर भला बताओ तो सही मैंने कब तुम्हारे सामने कोई बात झूठ कही है जो तुमने मुझको इतनी बातें कह डालीं?

स्वामी—न कही हो तो अच्छा ही है। अच्छा इस बात को भी अब रहने दो। अब मैं एक दूसरी बात कहता हूँ। इसी तरह के दो गुण और हैं—सन्तोष और पवित्रता। सन्तोष की बात किसी दूसरे दिन फुरसत मिलेगी तो कहूँगा। आज पवित्रता की बात कुछ कहता हूँ। बाहरी जगत में तुमने कई ऐसी चीज़ें देखी होंगी कि जिनको छूने से जी घिनाने लगता है, शरीर पर लग जाने से शरीर मैला हो जाता है। इसी तरह से भीतरी जगत में भी कई ऐसे भाव हैं जिनको मन में सोचते ही लज्जा होने लगती है, जिनकी सुध बनाए रखने से मन बिलकुल मैला हो जाता है। बाहरी जगत का मैल साफ पानी में नहाने से छुट जाता है—उसी तरह अच्छे विचारों में डूबे रहने से मन की मलिनता भी छुट जाती है। बुरी भावनाओं को दूर रखने को ही मन की पवित्रता कहते हैं। मेरी समझ में बुरी बातों की चर्चा न सुनने से या किसी तरह के बुरे कामों को न देखने से मन मैला नहीं होने पाता। इस विषय पर मैं तुम लोगों के एक बहुत ही बुरे दोष को जानता हूँ। तुम

लोग अपनी सखी सहेलियों से बड़ी लज्जा की बातें कह सुना करती हो। जिन बातों को अपने मुख से सुनकर भी लाज से मर जाना पड़ता है, तुम लोग बे रोक टोक ऐसी बातों की चर्चा किया करती हो।

स्त्री—तुमने सुना है?

स्वामी—सुना नहीं है तो कहता कैसे हूँ?

स्त्री क्या तुम लोग अपने हमजोलियों के साथ कभी ऐसी बातें नहीं कहते सुनते?

स्वामी तुम लोग ऐसा ही सोचती होगी? छिः! वैसी बातें हम लोग मुँह से निकाल ही नहीं सकते। और कोई ऐसा करता भी होगा तो वह अच्छा नहीं करता। मर्दों में कोई कहता भी होगा तो कहने वाला भले आदमियों में विरला ही होगा। इससे ऐसी बातें बहुत कम ही कही जाती हैं। पर औरतों में ऐसी बातें कहने वालियों की कमी नहीं है। कहीं कहीं पर सुना गया है कि बुढ़िया और जवान स्त्रियों में ऐसी बातें हो रही हैं।

स्त्री—हाँ, सो तो है ही। मर्द कहें तो तुम कहते हो कि बहुत कम लोग ऐसे हैं। और औरतें तो गली गली गला फाड़ कर कहती फिरती हैं। पराया ऐब देखने के लिये आँखों में रोशनी भर जाती है, और अपना ऐब देखना हो तो चशमा लगा कर भी सारा ऐब नहीं देख पड़ता। तुम लोगों की लीला ही न्यारी है।

स्वामी—सच कहना?

स्त्री—सच नहीं तो क्या झूठ ?

स्वामी—और गाली गाना ! क्या स्त्रियाँ गला फाड़ फाड़ कर ताली बजा बजा कर बिलकुल बेहया बन कर गालियाँ नहीं गाती हैं ? क्या तुम इसको मन की पवित्रता बढ़ाने वाला काम समझती हो।

स्त्री—नहीं, गाली गाना और बुरे शब्द मुँह से निकालना—नहीं, उनको मन में सोचना तक महा पाप है। जाने दो—एक बात तो कहना तुम भूल गए हो।

स्वामी—कौन सी बात ?

स्त्री—किताब हाथ में उठाते ही जिस बात के कहने को तुमको आदत है।

स्वामी—अच्छी बात याद दिलाई है। बुरे रसों से भरे हुए उपन्यास और काव्यों के पढ़ने से भी मन अपवित्र हो जाता है। इसे तो जानती ही हो, फिर पूछना क्या है। इस पर मैं और ज्यादा नहीं कहूँगा !

स्त्री—नहीं, फिर भी कुछ तो कह दो—थोड़ा सा।

स्वामी—हँसी करती हो। हँसी के लिये समय कुसमय का ध्यान भी तुम नहीं रखती हो। काम के समय हँसी अच्छी नहीं लगती।

स्त्री—तब क्या अच्छी लगती है ?

स्वामी—गम्भीरता।

स्त्री—(गम्भीर बन कर और मुँह फुला कर) बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा।

स्वामी—वाह, कैसी आज्ञाकारिणी हैं !

स्त्री—यह तो बड़े मुशकिल की बात है! चुप रहो तो आफ़त, बोलो तब भी आफ़त। तब बताओ मैं क्या करूँ?

स्वामी—कहो तो मैंने क्या कहा है? थोड़े ही में कहना। अभी बहुत कुछ कहना बाकी है।

स्त्री—अच्छा सुनो। श्री शुकदेव जी महाराज बोले कि हे नाथ! लज्जा स्त्रियों का आभूषण है। नम्रता यानी मुलायमी चुरैल को भी खूबसूरत बना देती है। सब लोगों से प्रीति रखनी चाहिए। बिना प्रेम के निष्काम धर्म नहीं होता। सुख दुःख दोनो में धीरज धरना चाहिए। हड़बड़ी से कोई काम नहीं करना चाहिए। दुश्मन को भी क्षमा करना चाहिए। झूठ बोलना महा पाप है। बातों की मारपेंच से छल चतुराई करना भी झूठ बोलने का छोटा भाई है। मन को हर घड़ी पवित्र रखना चाहिए। मुख से कभी अपवित्र शब्द नहीं निकालने चाहिएँ। बुरा संग और बुरी पुस्तक दोनो से दूर भाग जाना चाहिए। यही न? कुछ रह तो नहीं गया?

स्वामी—हाँ, ठीक है। अब एक और ही बात कहता हूँ। बहुत से गुण हैं तो गुण, पर उनके ज्यादा होने से वे दोष हो जाते हैं। जैसे बहुत मीठा खाना नुकसान करता है। जिन गुणों का बढ़ना ज़रूरी है, उनके विरोधी दोषों को दबा रखना चाहिए। जैसे कड़ी बोली, शत्रुता, स्वार्थ, झूठ, उतावली, अपवित्रता इत्यादि। इनके सिवाय क्रोध, डाह, पराई निन्दा, लोभ, अहंकार, और ऐसे ही ऐसे और भी कई विषयों पर बोलने की इच्छा मुझे थी, पर आज और सावकाश नहीं

है। पर क्रोध पर कुछ कह देना अच्छा है। क्योंकि क्रोध स्त्रियों में बड़ा हानिकारक होता है।

शास्त्र में षड्रिपु यानी छ दुश्मनों की बात कही गई है, उनमें से काम और क्रोध से बढ़ कर जबर्दस्त रिपु और कोई नहीं हैं। लोभ इत्यादि रिपु बहुत दिनों तक मन को अपने अधिकार में रख लेते हैं सही, मनुष्य के चरित्र में ये घुल कर मिले हुए हैं सही, पर ये पराक्रम में काम और क्रोध की बराबरी नहीं कर सकते। छोटे से दीपक से हलका हलका उजियाला निकलता रहता है, लोभ भी उसी तरह आठों पहर जला करता है—और कभी कभी उत्साह मिल जाने से धधक कर भी जल उठता है। पर काम क्रोध बिजली की तरह लपक कर अन्तःकरण को जला कर भस्म कर देते हैं—ज्ञान को मार डालते हैं। ये ठहरते हैं बहुत थोड़ी देर तक, पर हैं बड़े भयंकर। इनकी प्रकृति बिजली की तरह होती है। बिजली चमकी नहीं कि बड़े जोर से बादल कड़कने लगा, साथ साथ आँधी पानी भी आ पहुँचे। यह सच है कि कुछ देर पीछे ये ठंढे पड़ जाते हैं, पर कौन जाने फिर कब अचानक भभक उठेंगे। इनके हाथों से छुटकारा मिल सके तब सहनशीलता गुण का साधन हो सकता है। जब क्रोध की आग हृदय में जल उठा करे उस समय जहाँ तक हो सके ज्वाला को बढ़ाने वाली चीज़ों से दूर रहना चाहिए। मन में बहुत क्रोध होने से जिह्वा और हाथ पाँव आदि इन्द्रियाँ उस का हुक्म मानने के लिये उठ खड़ी होती हैं। ज्ञानी मनुष्य ऐसे समय में सब से पहले जिह्वा पर लगाम कसकर उसे खींच

रखते हैं। असल में मौन साध लेना बहुत अच्छा होता है। क्रोध की लहर जब ज़ोर पकड़ने लगे, उस समय चुप-चाप रह सके तो फिर डर की बात नहीं रहती। ऐसा न करके गुस्से में आकर कुछ कह डालने से पीछे उसका सम्हालना बहुत कठिन हो जाता है। बहुत गुस्सा मालूम होने लगे बिछौने पर जाकर अकेली पड़ रहो। नींद आ जाय तो बीमारी आपही आराम हो जायगी। जो नींद न आवे मन को बहलाने के लिये कोई किताब ही पढ़ने लगो। या किसी छोटे बच्चे के साथ खेलने लग जाओ।

स्त्री—देखो तो सही, लड़कों की तरह जो जी में आता है कह रहे हो। गुस्सा चढ़ आवे तो सो कर भी उसे कोई रोक सकता है?

स्वामी—सुनने में तो यह बात लड़कों ही की सी जान पड़ती है। पर ये सब विधि वैद्य के काढ़े की सी है। काढ़े की दवाओं का नाम सुन कर वैद्य को पागल कहने की इच्छा होती है पर उससे रोगी का रोग छूट कर जब घास पत्तियों के गुण जान पड़ते हैं तब वैद्य की बुद्धि पर विस्मय होने लगता है। इसी तरह जो बात मैंने कहा है वह सुनने में पहले चाहे जैसी लगती हो, इस ढंग से काम करके जब अच्छा फल मिलेगा तब तुम जान सकोगी कि इस बात में कितना ज्ञान भरा है। भला लड़कपनही सही, एक बार इसकी परीक्षा लेकर देख तो लेना। क्रोध के समय क्रोध के विषय से मनको हटा कर दूसरे किसी विषय में लगा देना ही क्रोध रिपु की अकेली दवा है। सो इसे चाहे लड़कपन समझो, चाहे पागलपन।

अपनी दशा का छिपाना—छल

स्वामी—आज तो खूब बन ठन के बैठी हो? ये सब चीज़ें कहाँ मिलीं? सवारी कहाँ को चली है?

स्त्री—(मुसक्या कर) आज एक जगह विवाह है, वहाँ मेरा भी न्यौता है—सो वहीं जाना होगा।

स्वामी—बहुत अच्छी बात है। पर मेरे प्रश्न के आधे का जवाब कौन देगा? ये सब गहने कहाँ से आए?

स्त्री—चलो—तुमसे तो बोलना ही कठिन हो जाता है। और कहाँ मिलेंगे, गहने तुमही ने दिए हैं।

स्वामी—सच कहना? मेरी बात का जवाब दो। क्या तुम्हारे भाई ने ये सब बनवा दिए हैं?

स्त्री—(कुछ नाराज़ हो कर) भाई को क्या पड़ी है कि मेरे लिये गहने गढ़वाते फिरें? और वह हैं ही कहाँ के बड़े मालदार? स्वामी ही ने बहुत कुछ दिया है न, अब दूसरे लोग भी देने लग गए हैं।

स्वामी—तब फिर कहती क्यों नहीं, यह सब आए कहाँ से?

स्त्री—(सिर नीचा करके, मुसक्याती हुई) न्योते जाना है। वहाँ कितनी ही स्त्रियाँ आवेंगी। वहाँ यों ही जाया जाता है? इसीसे दो चार गहने मैं रुक्मिणी से माँग कर ले आई हूँ। (स्वामी के मुख की ओर देख कर) क्या इसमें भी कुछ दोष हो गया?

स्वामी—दोष नहीं तो क्या गुण है?

स्त्री—तुम्हारा चेहरा देखकर तो डर लगता है। मैं इन सबों को उतारे डालती हूँ। (गहने उतारने लगी)।

स्वामी—नहीं, रहने दो। जब पहिर ही लिए हैं तो उतारने की जरूरत नहीं है। पर फिर कभी ऐसा काम मत करना।

स्त्री—मैं गहने ही नहीं पहरूँगी—और न कहीं न्योते में जाऊँगी।

स्वामी—नाराज हो गईं! मैंने जिस सबब से तुम्हारे इस काम को नापसन्द किया है, जो तुम उसे समझतीं तो तुम्हें गुस्सा न आता; शरमा ही जातीं।

स्त्री—जानते ही हो कि मैं इन बातों को नहीं समझती-मुझे इतनी बुद्धि कहाँ है जो तुम्हारी बातों को समझा करूँ-पर—

स्वामी—मेरी बात को एक बार सुन तो लो। पीछे नाराज होती रहना। अभी थोड़ी देर के लिये गुस्से को इस आले पर उठा कर धर दो।

स्त्री—तुम तो हर बात में हँसी करने लगते हो। क्या कहना है? कहो, मैं सुन लूँगी।

स्वामी—छल किसे कहते हैं, जानती हो न?

स्त्री—जानूँ चाहे न जानूँ, गहनों के पहिरने पर छल की बात कैसे आ गई?

स्वामी—पराए गहनों को अपना बना कर पहरना एक तरह का छल ही तो है।

स्त्री—कैसे?

स्वामी—क्यों ? जो चीज़ अपनी नहीं है, सबको दिखाती हो कि वह अपनी ही है। देखने वाले समझेंगे कि ये गहने तुम्हारे हैं।

स्त्री—हाय करम ! क्या मैं सबसे कहती फिरूँगी—"अजी देखो जी, ये गहने मेरे हैं, मेरे कमासुत मालिक ने ये सब मुझको बनवा दिए हैं"।

स्वामी—मुँह से चाहे तुम वैसा न कहो, पर मतलब वही निकलता है। यही दिखाओगी कि गहने तुम्हारे हैं, सो चाहे मालिक ने दिए हों, चाहे और किसी ने दिए हों।

स्त्री—मैं तो कुछ बोलूँगी नहीं, तब जिसके जी में जैसा आवे समझा करे, मेरा उससे क्या बिगड़ेगा ?

स्वामी—सच कहना ?

स्त्री—सच क्या - मैं झूठ थोड़े ही बोलूँगी।

स्वामी अच्छा, तनिक सोचो तो सही, न्योते जाने के लिये गहने उधार लेने की क्या जरूरत पड़ी ?

स्त्री—वहाँ कितने भले भले घरों की बहू बेटियाँ आवेंगी—वे कितने तरह तरह के गहने, अच्छे अच्छे कपड़े पहर कर आवेंगी—भला ऐसी जगह मेरा खाली जाना अच्छा लगेगा ?

स्वामी—क्यों, उससे हर्ज ही क्या है ?

स्त्री—कुछ बहुत हर्ज नहीं है। वे समझेंगी कि कहीं से किसी की टहलनी आई है। और कुछ हर्ज नहीं है।

स्वामी—टहलनी ही समझने दो—नहीं, इस बात को जाने दो—टहलनी क्यों समझेंगी ?

स्त्री—जिसके पास धन है वह भी कहीं इस तरह से जाती है?

स्वामी—और गहने पहिर कर जाने से क्या समझेँगी?

स्त्री—चलो, चलो, तुम्हारे साथ झूठ मूठ बकवाद करके क्या होगा?

स्वामी—वे समझेँगी कि यह किसी बड़े घर की बहू है—इसके पास बहुत सोना चाँदी है, यही न?

स्त्री—समझने दो ऐसा।

स्वामी—तब वही बात न हुई। दूसरे लोगोँ की आँखोँ मेँ धूल झोँक कर तुम वह दशा अपनी बतलानी चाहती हो जो तुम्हारी नहीँ है। अपनी असली हालत छिपाने के लिये इस तरह से गहने पहिरने की तुम्हेँ चाह होती है। है न?

स्त्री—(लज्जित हो कर) तो ऐसा कौन नहीँ करता है? घर मेँ चाहे धन न हो, पर जान बूझ कर कोई बाहर किसी को यह बात जताता फिरता होगा?

स्वामी—नहीँ जताता है, या योँ कहो कि जता देने की इच्छा नहीँ करता है। पर इसी सबब से बहुतोँ का सत्यानाश भी हो जाता है।

स्त्री—हाँ, इतने ही से सत्यानाश हो जाता है!

स्वामी—क्योँ नहीँ? यह कोई छोटा सा दोष नहीँ है। और यह दोष तुम लोगोँ ही मेँ नहीँ है। पुरुषोँ मेँ इसकी मात्रा और भी ज्यादा है। अपने जीवन के सब कामोँ को अच्छी तरह विचारेँ तो जान पड़ेगा कि अपनी दशा को

छिपा रखने की चेष्टा हमारे सब कामों में बहुत अधिक दिखाई पड़ेगी। घर में खाने को टुकड़ा नहीं है, बाहर बड़े बड़े भोज दिए जाते हैं; बाल बच्चे भूखों मर रहे हैं, बाहर छाती पर घड़ी का चेन लटकता है। घर पर भिखारी आवे तो मुट्ठी भर भीख नहीं पाता, बाहर सभाओं में मनमाना चन्दा दिया जाता है। किसी तरह लोग मुझे बड़ा आदमी समझें, बस आठों पहर इसी बात की चिन्ता लगी रहती है।

स्त्री—तब मर्दों में भी यह दोष होता है?

स्वामी—बहुत कुछ। पर इसी लिये तुम लोगों में भी इस दोष का बना रहना उचित मत समझना।

स्त्री—अच्छा, जो इसमें इतना दोष है तो लोग ऐसा करते क्यों हैं?

स्वामी—करते हैं इस समय सुख पाने के लिये। हाल में तो सुख मिले, आगे जो कुछ होगा फिर देखा जायगा। इन गहनों को पहर कर जाओ और कोई देख कर कहने लगे कि इसका स्वामी बड़ा आदमी है, देखो कैसे कैसे गहने बनवा दिए हैं—इस बात को सुन कर तुमको ज़रूर ही बहुत आनन्द मिलेगा; और हो न हो स्त्रियाँ ऐसा कहेंगी भी। मुँह से चाहे न भी कुछ बोलें, उनके ढंगों से यही बात जानी जायगी। ऐसा सुन कर सब को आनन्द होता है, तुमको भी होगा। और इसी आनन्द के लालच ही से तुम को ऐसी इच्छा हो रही है।

स्त्री—यह बात ठीक है। अच्छा अच्छा पहिर ओढ़ कर जाने से दस जने की नजर पड़ती है। उसकी खातिर भी

ज्यादा होती है। सो हो न हो इसी लिये अच्छे अच्छे और बहुत से गहने पहिरने को जी चाहता है।

स्वामी—क्या यह बात अच्छी है ?

स्त्री—इसमें बुराई ही क्या है ? न इसमें चोरी है, न कुछ पाप है। जो इससे मन को कुछ सुख मिल सके तो ऐसा करने में दोष ही क्या है ?

स्वामी—दोष मैं अभी बताता हूँ। मान लो इन सब गहनों को पहिर कर तुम न्योते गईं। दस स्त्रियाँ तुमको घेर कर इन गहनों को सराहने लगीं। मन में तुमको आनन्द मिलता है, ऊपर कुछ लज्जा से तुम्हारे चेहरे पर ललाई छा रही है सिर नीचा करके तुम सब बातें सुन रही हो—इतने में किसीने आ कर कह दिया कि ये गहने तुम्हारे नहीं हैं, बड़ी जीजी के हैं—बताओ तो तब तुम्हारे मन में क्या होगा ?

स्त्री—यह क्या कुछ पूछने की बात है! जो चहेगा कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ; फिर कभी अपना कालिख चढ़ा हुआ मुँह किसीको न दिखाऊँ।

स्वामी—अच्छा, मान लो यह बात वहाँ पर नहीं खुली। पर कोई तुम्हारे गहनों को देख कर चुप चाप आपस में कुछ बोलें, तुम्हारे मन में होगा कि यह ताड़ गई हैं कि गहने मेरे नहीं हैं। यों ही तुमको झूठ मूठ की बेचैनी हुआ करेगी।

स्त्री—जैसा तुम कह रहे हो, ऐसा होने लगे तो मन में खटका ज़रूर होगा।

स्वामी—दुःख न होगा ?

स्त्री—ज़रूर होगा।

स्वामी—और भी देखो। वहाँ जिन्होंने तुम्हारे बदन पर उन गहनों को देख लिया है, कहीं दूसरी जगह वे ही तुमको दूसरी तरह से देख पावें तो वे क्या समझेंगीं? और क्या तुमको लज्जा और दुःख न होंगे?

स्त्री—होंगे क्यों नहीं?

स्वामी—और उन स्त्रियों में से कोई हमारे घर ही आवे तो उनका कैसा आदर करो?

स्त्री—जितना हो सकेगा, भरसक उनका आदर करूँगी।

स्वामी—भरसक से भी ज्यादा कुछ न करोगी? उस समय हाथ में दाम न रहें तब उधार लेकर भी उनकी खातिर करोगी न?

स्त्री—ऐसा तो करना ही पड़ता है। उस दिन तो इन्होंने हमको बड़ा आदमी समझा था, और आज पूरी खातिरदारी न होगी तो भला वे क्या समझेंगी?

स्वामी—बस देख लो, जरा सी भूल से बात बात में दुःख झेलना पड़ता है और हर घड़ी अपमान का डर बना रहता है। उस समय तो मालूम होता है कि इससे कुछ हानि नहीं है। पर आगे चलकर इसके हजारों ऐब आप से ही निकलने लगते हैं। जिसने एक दिन के लिये भी अपनी दशा को छिपा कर बड़ा आदमी बन कर अपना परिचय दिया है, वही जानता है कि अपनी झूठी बात को कायम रखने के लिये उसे कैसी कैसी दुर्गति झेलनी पड़ती है। कोई कोई घर तो इसी तरह के फ़जूलखर्ची से तबाह हो जाते हैं।

स्त्री—सच मुच यह काम अच्छा नहीं है। मैं अपने कान पकड़ती हूँ, फिर कभी ऐसा नहीं करूँगी। अपनी सच्ची दशा के कह देने में दुःख मिले तो वह एक ही दिन का दुःख है। उसे छिपा कर जन्म भर दुःख उठाना अच्छा नहीं है।

स्वामी—अकेली तुम ही ऐसा मत करना, मेरी तरफ भी नज़र रखना। जो काम किया जावे, अच्छी तरह से पहले उसका उद्देश्य समझ कर, सब बातों का आगा पीछा देख कर उस काम में हाथ डालना चाहिए। अच्छा, अब तुम जाओ।

स्त्री वहाँ से चल दी, और स्वामी से छिपा कर देह पर से गहनों को उतार कर न्योते में गई।

स्वामी का परदेश जाना

स्वामी—कालिज सोमवार को खुलेगा। सो मुझे कल ही जाना पड़ेगा।

स्त्री—ऐं: ! यह बात तुमने मुझसे पहले तो नहीं कही थी। कल तुमको मैं नहीं जाने दूँगी।

स्वामी—मैं क्या करूँ बताओ। सुख के लिये मैं अपना कर्त्तव्य नहीं भूल सकता। विद्याभ्यास के समय विवाह करना ही भूल है। इधर सुख लूटने की भी इच्छा—उधर जो काम करने का है-जो अपना कर्त्तव्य है-उसे भी पूरा करने की इच्छा है। एक ओर मन कहता है झूठ मूठ क्यों तकलीफ उठाते हो, जिसके लिये इतना दुःख सह रहे हो उस सुख को छोड़ कर चले जाना ठीक नहीं है; दूसरी ओर से कर्त्तव्य कहता है कि परिणाम को सोचो, इस समय तो सुख मिलेगा पर अन्त में क्या होगा—तनिक देर के सुख के लिये मुझे मत छोड़ो। मुझे छोड़ दोगे तो मैं कोसने लगूँगा, तुम्हारा सुख तब दुःख बन जावेगा। इन दोनो संकटों के बीच में पड़ कर मनुष्य बहुधा कर्त्तव्य की बुद्धि को भूल जाता है।

स्त्री—तुम जब ऐसी बात कह रहे हो, तब मैं तुमको किसी तरह रहने के लिये नहीं कह सकती। छिः ! कहीं अपने सुख के लिये मैं तुम्हारे सुख में काँटा हो सकती हूँ ? जो तुम्हारे करने का है क्या वह मेरा कर्त्तव्य नहीं है ? तुम लोग चाहे जो कुछ समझा करो पर स्त्रियाँ इतनी स्वार्थी नहीं हैं कि स्वामी के कर्त्तव्य या स्वामी के धर्म में गड़बड़ होने दें। पर हाँ इतना दुःख मुझको जरूर होता है कि

चार दिन तुमको अच्छी तरह देखने भी नहीँ पाई। चार दिन तुम्हारे चरणोँ की सेवा नहीँ कर सकी। अच्छा एक काम क्योँ नहीँ करते, उससे तुम्हारा काम भी न बिगड़ने पावेगा और मेरी बात भी रह जावेगी। मुझे अपने साथ क्योँ नहीँ ले चलते?

स्वामी—अच्छी कही। साथ रहने को इतना जी चाहता है?

स्त्री—क्या इस मेँ कुछ सन्देह है? स्त्री को इससे बढ़ कर और किस बात की चाह हो सकती है? स्वामी के चरणोँ के पास रह कर, उनके पाँव पूजने से बढ़ कर दासी को और कौनसी लालसा हो सकती है? भला तुम्हारे पास रहने की लालसा नहीँ होती? तुम परदेस मेँ रह कर दुःख पाते हो और मेरे जीते जी मुझसे तुम्हारी सेवा नहीँ बनती, क्या यह कुछ ऐसा वैसा दुःख है? तुमको एक लम्बा साँस भरते देख कर मेरे कलेजे का खून सूख जाता है। तुम्हारा चेहरा सूखा हुआ देखती हूँ तो संसार भर मेँ अँधेरा छा जाता है, तुम से दूर रह कर भला मुझको कल पड़ती है? तुम लोग स्त्रियोँ का दुःख क्या समझोगे। स्त्री के लिये स्वामी क्या वस्तु है, तुम लोग कैसे जानोगे! हमारे मन की बात तुम लोग नहीँ लख सकते। पर एक दिन हमारे मन मेँ पैठ सकते तो जान सकते कि मैँ जो कह रही हूँ वह कहाँ तक सच है। हम तुमसे प्रेम न रक्खेँ तो किस से रक्खेँ। पिता की भक्ति, माता की भक्ति, भाई का प्यार, ये सब एक पति ही मेँ आ कर बटुर जाते हैँ। जब मैँ पहले ससुराल आई थी—बचपन से जिन लोगोँ के साथ प्यार था उन सबोँ को मन से अलग

करके जब तुम्हारे यहाँ आई थी, तब किसने मेरे दुःख को समझ कर मुझे ढाढ़स दिलाया था ? उस समय कौन मेरे आँसू पोंछ देता था ? मेरे लिये आपत्ति में सहारा, सम्पद में सुख, धर्म में ईश्वर तुमही हो, तुमसे प्रेम न रक्खूँगी तो और किस से रक्खूँगी ? मुझे दुःख होगा ? क्या अपना दुःख मिटाने के लिये मैं तुम्हारे साथ जाना चहती हूँ ? तुम्हारी सेवा कर सकूँ यही मेरे मन की अभिलाषा है । सभी स्त्रियाँ ऐसा सोचती हैं ।

स्वामी—मैं जानता हूँ, तुम लोगों में ऐसी ही दया रहती है। और इसी से तो हम लोगों ने तुम सब को गृहलक्ष्मी बना रक्खा है । तुम ऐसी हो इसी से तो भगवान की सब रचनाओं में हम लोग भी तुम को सब से श्रेष्ठ समझा करते हैं—धरती माता की गोद में तुम को बड़ी पवित्र वस्तु समझते हैं। इतना प्रेम दिखाती हो इसी से संसार के दुःख चिन्ताओं से जल भुन कर तुम्हारे पास आते ही तन और मन दोनो को ठंढक पहुँचती है । नारी की नाई प्रेमवती, नेह ममता की भंडार और कौन है ? ऐसा कठोर हृदय किस पुरुष का है जो ऐसे सुख की सामग्री, शान्ति की ऐसी खान को अपने साथ नहीं रखना चाहता ? पर—

स्त्री—और 'पर' काहे को कहते हो ? मुझे क्षमा करो, आज मेरे हृदय के किवाड़ खुल गए हैं; इस समय लज्जा मेरे मन को नहीं रोक सकती । दासी को उस सुख से विमुख मत करो ।

स्वामी--प्यारी मेरी ! मुझे तुमने बड़े दुःख में डाल दिया है। इस समय तुम को अधीर होना नहीं चाहिए। जो कुछ मैं कहता हूँ ध्यान देकर सुनो। मेरी बातें कठोर तो लगेंगी। पर मैं क्या करूँ कर्त्तव्य की आज्ञा मैं नहीं टाल सकता। क्या तुम हमारे घर का हाल नहीं जानती हो। तुम यहाँ से चली जाओगी तो हमारे बूढ़े माता पिता की सेवा कौन करेगा, गृहस्थी को भी कौन सम्हालेगा ? और मान लो कि हमारे पास धन की कमी नहीं है। पर जो उसकी कमी ही होवे तो तुम को साथ रखने का खर्च कहाँ से आवेगा ? एक ओर से तो मैं तुम्हारी इच्छा की बड़ाई करता हूँ पर साथ ही उस की निन्दा भी करता हूँ। लालसा अच्छी बात की ही होने से ही पूर नहीं पड़ती, लालसा को सीमा के भीतर रखना चाहिए—न वह बहुत बढ़ने पावे, न बिलकुल कम ही होने पावे। स्वामी के साथ रहने, उसके दुःख सुख में भागी बनने की लालसा बहुत अच्छी है। परन्तु देश काल के विचार से इससे निन्दा भी मिल सकती है। अपनी इच्छा को मन में जगने देने के पहिले सोचना चाहिए था कि घर छोड़ कर मेरे साथ चलने में यहाँ कैसी गड़बड़ मच जावेगी। अम्मा को कैसा दुःख होगा। ऐसी दशा में अपनी लालसा को छोड़ देना ही ठीक है।

स्त्री—जो ऐसा ही करने में तुमको सुख मिले, तो मैं दुःख झेल कर भी ऐसा ही करूँगी।

स्वामी—लालसा को छोड़ देने ही से मैं सुखी नहीं होऊँगा। उसे छोड़ने के साथ साथ तुम सन्तोष को भी साध-

होगी तभी मुझको आनन्द मिलेगा। सन्तोष की बात सुनो। इस संसार में किसीकी सब इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। पर क्या इससे रात दिन सन्तोष छोड़ कर बैठना चाहिए? जितनी इच्छा पूरी हो सके उतनी ही ले सन्तोष करना उचित है। बहुत लोग कहा करते हैं कि लालसा और सन्तोष ये दोनो आपस में विरोधी हैं; एक के रहते दूसरा नहीं रहता; पर एक के बिना उन्नति नहीं होती, दूसरे के बिना सुख नहीं मिलता। मेरा मत ठीक ऐसा नहीं है। दोनो एक साथ रह सकते हैं और दोनो को साथ ही रहना चाहिए। जिसका पूरा होना किसी तरह सम्भव नहीं है, ऐसी लालसा को मैं लोभ समझता हूँ। लोभ से मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है—दिमाग़ ख़राब हो जाता है। चेष्टा करने से जो लालसा पूरी हो सकती है, ऐसी लालसा ही लालसा है—दूसरी लालसा बुरी लालसा वा लोभ है। जो पूरी हो सकती है, पर किसी सबब से अभी पूरी नहीं होती, उस लालसा के अधूरे रहने पर भी लालसा करने वाले का सन्तोष नहीं बिगड़ता। कुछ तो दूसरी बातों को पाकर, और कुछ लालसा के पूरा न होने से उसका सन्तोष मज़बूत हो जाता है। याद रखना सन्तोष और लालसा दोनो का निवास एक ही जगह होता है। मेरी राय में तुमको भी सन्तोष करना चाहिए।

स्त्री—अच्छा, ऐसा ही होगा। जिसको तुम बुरा कहते हो वह जरूर ही बुरा है। मैं तुम्हारे साथ चलना नहीं चाहूँगी। पर बीच बीच में चिट्ठी पाने की लालसा करूँ तो वह तो बुरी लालसा या लोभ की गिनती में नहीं आवेगी?

स्वामी—तुमने आज मुझको कितना सुख दिया सो म[illegible] कह नहीं सकता। स्त्री का यही तो काम है। जिससे स्वामी के कर्त्तव्य और धर्म की हानि न हो, स्त्री को वही करना चाहिए—वही उसका कर्त्तव्य है। स्वामी को धर्म के काम में उत्तेजना देना और उसे अधर्म से बचा रखना भी स्त्री का काम है। अपने सुख के लिये उसको आपत्ति में डालना असती स्त्री का काम है। स्त्री स्वामी की इतनी प्यारी होती है कि उसे बहुधा स्त्री की अनुचित बातों को भी मानना पड़ता है। इसलिये सती स्त्रियाँ स्वामी से किसी बात के लिये हठ करती बेर अच्छी तरह पहले से सोच लेती हैं। जो स्त्रियाँ आप कैकेयी बन कर अपने स्वामी को दशरथ बनाना चाहती हैं वे बड़ी अपराधिनी हैं। अच्छा आज यहीं तक रहने दो।

सतीत्व

[स्वामी का पत्र]

इलाहाबाद,
श्रावण १४, संवत १९६७।

प्रिये !—कल मैं यहाँ कुशल क्षेम से आ गया हूँ। यहाँ पर सब बातों का बहुत अच्छा बन्दोबस्त है, इसके लिये तुम चिन्ता मत करना।

तुमको मेरा यह पहिला ही पत्र है। झूठ मूठ की बहुत सी बातें लिख कर पत्र को पूरा कर देने की इच्छा नहीं होती। इसलिये किसी अच्छे विषय पर कुछ लिखने को जी चाहता है। वह कौन सा विषय है सुनोगी ? उसका नाम 'सतीत्व' है। हो न हो इसका नाम सुनते ही तुमको कुछ क्रोध आ जायगा। पर मैं जान बूझ कर इस विषय को लिखता हूँ। इस लेख को पढ़ कर इसका उपकार तुमको आपही जान पड़ेगा।

पाप की लीला भूमि—नरकवासियों के नाटक खेलने का ठौर—दुःख-यातना से भरी हुई इस पृथ्वी पर रमणी का सतीत्व एक स्वर्गीय रत्न है। ऐसी दुर्दशा के दिनों में दुःख से भरी हुई अमावस्या की अँधेरी रात में—हिन्दू के घर में नारी का सतीत्व एक चमकता हुआ हीरा है—अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा है। हिन्दू का हृदय सब दुःखों को सह सकता है, सब यातनाओं की परीक्षा में 'पास' हो सकता है, परन्तु जीते जी रमणी के सतीत्व का राई भर अपमान

भी नहीं सह सकता। उसे जलते हुए अग्निकुंड में डाल दो, अस्त्रों से उसके अंगों को काट काट कर टूक टूक कर दो, वह चूँ तक नहीं करेगा; परन्तु देखना, कहीं उसके प्यारे रत्न का तनिक भी अपमान मत होने देना, नहीं तो प्रलय हो जावेगा। कटहरे में बँधा हुआ सिंह कटहरा तोड़ कर टूट पड़ेगा। जिस समय मुसल्मानों के अत्याचार से हिन्दुस्तान पीड़ित हो रहा था, जिस समय इन्द्रिय सुख के लोभी, अत्याचारी मुसल्मान बादशाह हिन्दू नारियों के इस महामूल्य रत्न को चुराने के लिये हज़ारों मनुष्यों के जीवन को घास तिनका समझ कर उनके लोहू से लड़ाई का मैदान रँग दिया करते थे, उस समय (हाय! अब उस बात के कहते हुए छाती फट जाती है, इस शिथिल शरीर में भी सिंह का विक्रम आने लगता है) हमारे पूर्व पुरुष पास खड़े रह कर, आँखों से नदी की सी धाराएँ बहाते बहाते, अपनी गृहलक्ष्मियों का मरना देखा करते थे, परन्तु उन दुराचारियों को अपनी गृहदेवियों का पवित्र शरीर छूने तक नहीं देते थे। राजपूतनियों की दृढ़ता को सोच कर अब भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं भय से, विस्मय से कलेजा भर जाता है। सामने साक्षात स्नेह की प्रतिमा जननी देवी, हृदय के भीतर बसने वाली प्यारी स्त्री, आनन्द-रूपिणी बहिन और दुलार से भरी हुई बेटी—ये सब जन्म भर के लिये विदा होकर चली जा रही हैं; देश की दुर्दशा रुक नहीं सकती; दुराचारियों के हाथों से अपने प्राणों से भी प्यारे सतीत्व की रक्षा करने का उपाय न देख कर राजपूत नारियाँ अच्छे अच्छे

वस्त्र आभूषण पहर पहर कर दयामय भगवान का नाम लेते लेते प्रचंड धधकते हुए अग्निकुंड के सामने पाँति बाँध बाँध कर खड़ी हैं; एक ओर राजपूत वीर हिमाचल की तरह अचल होकर खड़े खड़े आकाश की ओर ताक रहे हैं; कोई कोई इस दृश्य को एक ही बार देख कर तीर की तरह दौड़ कर रणक्षेत्र में प्राण झोंकने को जा रहे हैं—किसकी शक्ति है कि उन उन्मत्त सिंहों की गति को रोक सके; और कोई कोई चुपचाप कठपुतलों की भाँति खड़े हैं, आँखों से आँसू की धाराएँ चल रही हैं—उसी समय वे हँस कर अपने हृदय की दुर्बलता को दूर हटा कर आँसू पोंछ कर अकड़ कर खड़े हो जाते हैं। कोई मनुष्य अपना कलेजा फटते देखकर जोर से छाती को हाथों से दबा रहा है। देखते देखते एक बूँद आँसू सभी के नेत्रों में भर आता है—सब लोग एक ही ओर अपनी दृष्टि डालते हैं। हाय! उस डरावने भयंकर नाटक का खेल आरम्भ हो गया है। पल ही भर में उन सब सोने की पुतलियों की राख को उड़ाकर पवित्र पावक की शिखाएँ आकाश छूने लगीं; मानो उन सती कन्याओं को गोद में लेकर सतीत्व की अनन्त, पवित्र, नेत्रों को तरावट पहुँचाने वाली, ज्योति फैला कर, अग्निदेव उनको न्यायकारी भगवान के सामने ले चले। सतियाँ जल गईं। नाटक का खेल भी बन्द हो गया। राजपूतों का वह भाव भी बदल गया। भीषण प्रतिज्ञा का तेज उनकी आँसुओं में चमक कर अंगारों की नाईं सुलगने लगा। आँसू सूख गए। एक बार ऊपर की ओर देख कर बड़े वेग से राजपूत लोग रणक्षेत्र की ओर

दौड़ने लगे। इन सब पुरानी बातों को सोच कर आत्मा तृप्त होती है, मन पवित्र होता है, पाप से घृणा होने लगती है, साहस की उत्तेजना शरीर में भर जाती है। यह सत्य है कि अब न वे दिन रहे, न वह तेज ही रह गया है, परन्तु हिन्दू अब भी सतीत्व का मूल्य नहीं भूले हैं, अब भी सतीत्व के लिये हिन्दू प्राण वार देते हैं। हिन्दू नारी अब भी अपने उस अनमोल रत्न की रक्षा करने के लिये प्यारे प्राणों को तुच्छ समझती है।

हमारे पुरखा लोग जिस तरह सतीत्व का सम्मान करना जानते थे, उनकी नारियाँ भी उसी सतीत्व रक्षा के अलौकिक दृष्टान्त दिखा गई हैं। हम लोगों में पहले सती हो जाने की—अर्थात् मरे हुए स्वामी के साथ जल जाने की—जो रीति थी उसे तो तुम जानती ही होगी। कौन हिन्दू नारी इसे नहीं जानती है? सती नारी जलती चिता पर मरे हुए पति के दोनों पाँवों को बड़े यत्न से अपनी छाती पर लेकर प्रेम से खिले हुए मुख से राम राम कर रही है—ऐसा दृश्य याद पड़ने पर भी हमारा गौरव बढ़ जाता है।

पवित्रता ही सतीत्व है। पाप से बची रहने ही से सतीत्व की रक्षा होती है, ऐसा मत समझना। पाप की बात को मन में आने देने से भी सतीत्व नहीं रहता। खेद की बात है कि सतीत्व का अर्थ आज कल बहुत संकीर्ण हो गया है। परन्तु इसका असली मतलब क्या है, वही जानना चाहिए।

जो सती है, स्वामी ही उसका सब कुछ है। स्वामी ध्यान है, स्वामी ज्ञान है, स्वामी धर्म है, स्वामी मोक्ष है। स्वामी

बिना वह और कुछ नहीं जानती—जानना चाहती भी नहीं। स्वामी उसका देवता है स्वामी उसका गुरू है। स्वामी कुरूप हो, कोढ़ी हो, वही उसके लिये सुन्दर है, सोने का सा चमकता रूप वाला है। स्वामी दरिद्र हो, अनाथ हो, उसके लिये वही राजराजेश्वर है। स्वामी मूर्ख हो, एक अक्षर का भी ज्ञान न रखता हो, वही उसके लिये पंडितों का चूड़ामणि है। स्वामी की घास फूस की टूटी मड़ैया उसके लिये सोने का बना हुआ महल है। स्वामी के साथ पेड़ तले घास का बिछौना भी उसके लिये फूलों की सेज है। दक्ष राजा की कन्या सती इसी लिये अपनी बहिनों के ऐश्वर्य की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखती। वह श्मशान में रहने वाले, भिक्षा माँग कर पेट भरने वाले बूढ़े भोला की सेवा में तन मन से लगी थी। शिव के उस विशाल शरीर पर भस्म लगाते लगाते वह सुध बुध खो कर आनन्द में डूब जाती थी। इसी लिये जनक दुलारी ने राजभवन का सुख छोड़ कर बनैले पशुओं से भरे, काँटों से परिपूर्ण जंगलों में स्वामी के साथ घूम कर पाँवों से रुधिर बहा कर भाँति भाँति के दुःख झेल कर भी अपने को महा सुखी जाना था। पर्णकुटी में पत्तों का ढेर बिछा कर स्वामी के पास पड़ी रह कर भी वह स्वर्ग के स्वप्न देखा करती थी।

५०. मैं तुम से एक कहानी कहता हूँ। एक ब्राह्मण जन्म-रोगी और कोढ़ी था, उसके शरीर पर के घावों से ऐसी दुर्गन्ध निकलती थी कि कोई उसके पास नहीं ठहर सकता था। पर स्त्री उसकी बड़ी लक्ष्मी थी। वह उसी पति को देवता

की नाई भक्ति करती थी, उसकी सेवा में दिन रात लगी रहती थी। ब्राह्मण के पास कुछ नहीं था। रहने को एक फूँस की झोपड़ी थी। ब्राह्मणी नित्य सवेरे उठ कर स्वामी के घावों को धो धा कर, उसे नहला धुला कर, किसी गृहस्थ के घर दासी का काम करने जाती थी। इसीसे दोनो का खर्च चलता था। इसी तरह वह स्त्री ज्यों त्यों करके अपना और अपने पति का पेट भर लेती थी। एक दिन ब्राह्मणी पति को पीठ पर लाद कर गंगा नहाने गई। राह में किसी वेश्या का बड़ा सुन्दर महल था। उस समय वह वेश्या छत पर खड़ी हो कर अपने बालों को सुखा रही थी। कोढ़ीराम की दृष्टि उस पर पड़ गई। अभागा ब्राह्मण उसका रूप देख कर पागल हो गया। उसे और कुछ अच्छा ही नहीं लगता। सती स्त्री स्वामी की दुर्दशा देख कर बहुत घबराने लगी। जब स्वामी की बेचैनी का कुछ पता न लगा सकी तो एक दिन उससे इसका कारण पूछने लगी। ब्राह्मण बहुत अधीर हो रहा था; उससे रहा न गया और इससे अपने मन का सच्चा हाल कह दिया। स्त्री बड़ी धीरज से चुप चाप उसकी बातें सुनने लगी। एक बार आकाश को ओर देख कर उसने फिर पति की ओर देखा। थोड़ी देर मन में कुछ सोच विचार कर उसने पति को ढाढ़स दिलाया और आप घर से चल खड़ी हुई। उस वेश्या की बात नगर वाले सभी लोग जानते थे। ब्राह्मणी भी कुछ कुछ जानती थी। परन्तु अपने पति की कामना पूरी करने की इच्छा ने उसके मन में इतना जोर पकड़ लिया था कि वह असम्भव को भी सम्भव समझने लगी, बुरे काम

को भी अच्छा काम समझने लगी। धीरे धीरे सब सतियों की सिरताज वह परम सती उस वेश्या के महल के द्वार पर जा पहुँची। देवढ़ीदारों ने उसे भीतर जाने दिया। किसीसे कुछ न कह कर वह एक दम उस वेश्या के पास चली गई। उस समय अनेक दासियाँ उस वेश्या की सेवा में लगी हुई थीं। वह पलङ्ग पर बैठी हुई पान चबा कर एक सोने के उगालदान में थूक रही थी। इतने में सैकड़ों जोड़ों से जुड़ा हुआ फटा और मैला वस्त्र पहरे हुए ब्राह्मणी बड़ी कातरता से वहाँ पर आ खड़ी हुई। उसे देखते ही न मालूम क्यों महा-अभिमानी वेश्या के गर्वित नेत्र नीचे हो गए। वह पलंग से उतर कर खड़ी हो गई। उस फटे वस्त्र के भीतर से सतीत्व की दैवी ज्योति निकल रही थी, उसीको देख कर वेश्या चौंक पड़ी। उसने बड़े आदर से पूछा, "माता आप कौन हैं?" ब्राह्मणी ने धीरे धीरे रो रो कर अपनी कथा उसको कह सुनाई। सुनते ही वेश्या की बोली रुक गई। वह झट से ब्राह्मण की इच्छा पूरी कर देने को राज़ी हो गई। दासियाँ तो उसकी बात सुनते ही दङ्ग हो गईं। और ब्राह्मणी उसकी नीच वृत्ति की बात भूल कर के उसे आशीर्वाद देने लगी। घर लौट कर सती स्वामी को कंधे पर लाद कर फिर वेश्या के पास लौट आई। वेश्या ने बड़े आव भगत से ब्राह्मण को सुनहरे छपरखट पर बैठाया। इतनी दूर आने से ब्राह्मण को प्यास लग रही थी, उसने पीने को जल माँगा। वेश्या बड़ी बुद्धिमती थी, तुरन्त एक सोने के पात्र में और मिट्टी के पात्र में—दोनों में जल भर कर वह ब्राह्मण के सामने ले आई और बोली दोनों में

जल है, जिसमें से चाहे पी लीजिए। ब्राह्मण ने कहा सोने के पात्र से मिट्टी के पात्र का जल ठंढा है, लाओ उसीको पी लें। तब वेश्या ने हाथ जोड़ कर कहा, महाराज, इतना ज्ञान जब आपमें मौजूद है तब फिर ऐसे काम में आपकी मति क्यों हुई? मिट्टी के पात्र में ऐसा शीतल जल रहते आप सोने की चमक दमक देख कर क्यों लट्टू हो गए। इसमें तो हृदय में ठंढक पहुचाने वाला वैसा ठंढा जल आपको नहीं मिलेगा। वेश्या की बात सुन कर ब्राह्मण की आँखें खुल गईं। वह नेत्र फाड़ कर उसकी ओर देखने लगा। तब वेश्या ने अपने गले में आँचल डाल कर ब्राह्मणी के चरण छू कर कहा, "माता! सती नारी की इतनी महिमा कौन जानता था। माता! आज मेरा जीवन भी आपने कृतार्थ कर दिया। मेरे पास धन बहुत है, वह सब मैंने आपको दे डाला, इसे ले कर मेरा जन्म सुधार दीजिए। पापिनी समझ कर मुझसे घृणा मत कीजिए। आपकी सी नारी जगत में मिलना कठिन है। आप सब सतियों की शिरोमणि जगदम्बा की अवतार हैं। मैं आज से आपकी दासी बन कर रहूँगी। सती नारी की चरण सेवा से मेरे सब पाप छुट कर मेरी भी मुक्ति हो जावेगी।

देखा तुमने, सतीत्व किसे कहते हैं! देखा, सतीत्व का माहात्म्य कैसा होता है!

सतीत्व का तेज साधारण नहीं होता। किसकी शक्ति है कि उस तेज के सामने खड़ा हो सके? बुरे चाल के मनुष्यों की मजाल नहीं कि वे उसके पास तक पहुँच सकें। भयावने जंगल के बीच में अकेली छोड़ कर, आधा वस्त्र फाड़ कर

पहिर कर, राजा नल न जाने कहाँ को चले गए हैं—अभागिन दमयन्ती की नींद टूट गई। आँखें खोल कर देखती है, यह क्या ! नल कहाँ गए ? चारों ओर घना जंगल है, बड़े बड़े पेड़ आकाश से बातें कर रहे हैं—कहीं कोई भी नहीं है ! दमयन्ती जोर से रोने लगी—नल कहाँ गए ? कोई उसकी बात का उत्तर नहीं देता, कोई उसे ढाढ़स दिलाने को नहीं आता - उसकी अपनी ही प्रतिध्वनि वन के भीतर बड़े डरावने शब्दों में गूँज रही है-—नल कहाँ गए ? उस भारी वन में मनुष्य का नाम तक नहीं है, वहाँ पत्नी तक नहीं बोलते, कोई पशु भी नहीं चरता—ऐसी जगह दमयन्ती रो रही है। कहाँ पिता का राज पाट—कहाँ नल की राजपुरी—कहाँ सब नौकर चाकर—इन बातों पर उसका ध्यान एक बार भी नहीं दौड़ता—पर हाय ! वह हृदय के देवता, वह सब धनो से बड़े धन—सब सुख चैन की खान कहाँ चले गए ! दमयन्ती छाती पीट पीट कर रो रही है। पर यह क्या हुआ ! यह कैसी महा आपत्ति आ पड़ी ! उसके रोने पीटने के उत्तर में कौन ठठा कर हँस रहा है ? काल के समान कराल एक व्याधा आकर उससे प्रेम की भीख माँग रहा है। बिना कुछ बोले चाले दमयन्ती उसकी घिनावनी बातें सुनने लगी, आँसू की धारा से धरती को भिगोने लगी। पर व्याधा बड़ा अधीर होने लगा, वह जबरदस्ती करने पर उतारू हो गया। दमयन्ती ने हाथ जोड़ कर बड़े दुःख से उसकी करुणा माँगी, रो रो कर उसे बहुत समझाया, पर उसके पत्थर का कलेजा नहीं पसीजा। दुराचारी सती की देह

छूने पर उतारू हुआ। तब दमयन्ती ने कोई दूसरा उपाय न देख कर अकुला कर एक बार अनाथों के नाथ को पुकारा। देखते ही देखते सती के मुख-मंडल पर स्वर्ग की ज्योति चमकने लगी, उसकी आँखों से अलौकिक तेज निकलने लगा। व्याध चौंक कर खड़ा हो गया, सौ हाथ दूर हट कर खड़ा हो गया। सती ने अपना अपमान करने वाले की ओर एक बड़ी तीखी दृष्टि से देखा, उसके नेत्रों से अग्नि की लपेटें निकलने लगीं, देखते ही देखते वह मति का मारा व्याधा जल कर ढेर हो गया! आज कल तुम लोग इस अग्नि-शिखा वाली बात को चाहे झूठ समझ लो, पर सतीत्व तप का साधन कोई ठीक तरह से कर सके, दमयन्ती की नाईं स्वामी को अपना देवता समझ सके तो अब भी, आज कल के दुर्दिन में भी, बहुत कुछ हो सकता है। जो नारी सती है, उसे किसका भय है! ईश्वर आप उसके सहायक हो जाते हैं, उसके तेज के सामने खड़ा हो सके इतनी शक्ति कौन रखता है?

सतीत्व की जय सब जगह होती है। सावित्री वन में सत्यवान के मृतक शरीर को लेकर रो रही है। उधर यमदूत सती का तेज देख कर डर से भाग कर यमराज को समाचार कहते हैं, और यमराज आप सत्यवान को ले जाने के लिये आता है। परन्तु उसकी क्या शक्ति जो सती की गोद से उसके पति को छीन सके! जब दूसरी कोई युक्ति न चली तब वह सावित्री से विनती करने लगा। सावित्री ने सब बातें सुनीं और बहुत समझाने बुझाने पर पति के पास से

हट कर खड़ी हो गई। यम सत्यवान को लेकर चले। सती नारी पति को बिदा करके घर कैसे लौटती? वह भी पीछे पीछे चलने लगी। यम ने घूम कर देखा तो वह चौंक पड़ा। बोला—"सावित्री, घर लौट जाओ, क्यों मेरे पीछे लगी चली आती हो? जो मरता है वही मेरे अधिकार में आ जाता है। नियम टूट नहीं सकता। तुम लौट जाओ। कुछ माँगना हो, अपने स्वामी के जीवन को छोड़ जो चाहे माँग लो"। सावित्री के सास ससुर अन्धे थे। सावित्री ने माँगा कि उनकी आँखें अच्छी हो जावें। यम ने कहा, ऐसा ही होगा। वह जल्दी जल्दी जाने लगा। पर थोड़ी दूर चल कर जो उसने मुँह फेरा तो देखा कि सावित्री अब भी चली आती है। यम बोला, "अरी तू अब भी चली आती है! क्या और भी कुछ चाहिए? अच्छा जल्दी से माँग ले।" सावित्री के ससुर का राज छिन गया था, उसने फिर उनके राज पा लेने का वर माँग लिया। यम वर देकर झटपट चलने लगा, पर थोड़ी दूर चलकर देखा कि वह अब भी पीछा नहीं छोड़ती, साथ साथ चली ही आ रही है। यम घबरा गए, सावित्री से अपना पिंड छुड़ाना कठिन हो गया। फिर बोले "सावित्री! तू चली जा। कुछ चाहिए तो लेकर तू लौट जा।" वह बोली "महाराज, जो आपकी ऐसी ही इच्छा है तो सत्यवान से मेरे सौ लड़के होवें।" यमराज तब बड़ी जल्दी में थे, किसी तरह उसको वहाँ से हटा देने की चिन्ता में लगे थे, बोले, "अच्छा, अच्छा, ऐसो ही होगा, तू अब जा"। पर फिर जो उन्होंने मुख फेर कर देखा तो वह अब भी चली ही आती है। कुछ झिड़क कर बोले, "क्यों री, तु मानती नहीं है, फिर भी मेरे

पीछे पीछे चली ही आ रही है ?" सावित्री ने हाथ जोड़ कर कहा, "महाराज, आप यह कैसी बात कह रहे हैं ? आपने तो मुझे वर दिया है कि सत्यवान से मेरे सौ बेटे होंगे"। तब तो यमराज की अक्ल चकराने लगी, उनकी आँखें खुलीं। कहने लगे, "सावित्री ! तू धन्य है। मैं तुझे असीस देता हूँ, तू अपने स्वामी के साथ सुख से रह। आज से तेरा नाम सतियों में श्रेष्ठ होगा। जो स्त्री सावित्री का व्रत करेगी, वह कभी विधवा न होगी। जाओ बेटी ! घर को लौट जाओ। मैं तुम्हारे पति को प्राण दान देता हूँ। आज से मैंने भी जान लिया कि सती का सदा जय होता है।"

और एक कहानी मैं कहता हूँ। सुना है कि इसकी कथा सच्ची है। किसी गाँव में अतिथि को सेवा करने वाले एक धर्मात्मा रहा करते थे। उनकी प्रतिज्ञा थी कि अतिथि मुझ से जो कुछ माँगेगा, बन पड़ा तो मैं वह चीज उसे बिना दिए न रहूँगा। वह आप जैसे धर्मात्मा थे, उनकी सहधर्मिणी भी वैसी ही पतिव्रता और पुण्यवती थी। एक दिन किसी दुष्ट ने आ कर कहा, महाराज, आप मुझे अपनी रूपवती स्त्री को दे दीजिए। अतिथि-सेवक अतिथि की अनुचित बात को सुन कर सन्न हो गए। पर मन में सोचा कि यह जो चीज़ माँगता है वह मेरी शक्ति के बाहर नहीं है। इसीसे एक ओर तो प्रतिज्ञा टूट जाने का डर, दूसरी ओर महा अधर्म का भय उसको विकल करने लगा। धीरे से वह भीतर चला गया। सती स्त्री पति का मुख देख कर भय से विस्मित हो गई। वह सौम्य मूर्ति आज उदास हो रही है, हँसते हुए नेत्र आज मलिन हो गए हैं। सती का कलेजा धड़धड़ाने लगा, उसके

आँखों के सामने अंधेरा छा गया। बहुत विनती करने पर पति ने सब बात खोल कर कही, साध्वी स्त्री के चेहरे पर आनन्द भर आया। मानो उसने किसी भारी आपत्ति से अपना छुटकारा पाया। वह स्वामी से बोली, "तुम जा कर उस मनुष्य से कह दो, उसकी इच्छा पूरी हो जायगी। मैं अभी उसके पास जाऊँगी।" स्वामी ने साध्वी के हर्ष का कारण समझ लिया। समझ लिया कि स्वामी को आपत्ति से छुड़ा सकी, इसलिये सती को आनन्द हो रहा है। वह बहुत लज्जित हुए। पहले उन्होंने स्त्री की बात न मानी। पर अन्त में बहुत वाद विवाद के पीछे अतिथि से जा कर कहना पड़ा कि वह आती है। वह दुष्ट दोनो तरह से सुख की कल्पना कर रहा था। वह एक ओर सोचता था कि ऐसी सुन्दरी स्त्री से समागम होगा, दूसरी ओर सोचता था कि उसका पति जो अपनी प्रतिज्ञा तोड़ देगा तो उसे खरी खरी चार बातें सुनाने का मौका मिल जायगा। बेमतलब किसीको दुःख देने से भी दुष्टों को एक प्रकार के आनन्द का विकार हो जाता है। वह मन ही मन लड्डू खा रहा था कि अतिथि-सेवक सज्जन ने आकर समाचार कहा। अतिथि ने उसकी बात सुन कर न जाने क्या सोचा सो हम नहीँ जानते। पर उसी क्षण उस साध्वी रूपवती ने आकर पूछा, "अतिथि! तुम क्या माँगते हो?" दुष्ट ने कहा "कुछ नहीं।" हरे! हरे! यह कैसी बात हुई! नारी ने फिर पूछा, 'अतिथि! तुम क्या चाहते हो?" इस बार अतिथि ने गम्भीरता से कहा, "और कुछ नहीं, सूई और तागा चाहिए"। स्त्री ने बार बार पूछने

पर भी जब कुछ दूसरा उत्तर नहीं पाया तो वह वहाँ से चली गई। एक दासी आ कर एक सूई और थोड़ा सा तागा रख गई। अतिथि रात को अपनी कोठरी के किवाड़ भीतर से बन्द कर के सो रहा। सवेरे अतिथि-सेवक को बड़ा अचरज हुआ जब उसने देखा कि अतिथि ने अपनी दोनो आँखों की पलकों को सूई तागे से सी डाला है। जब अतिथि-सेवक दम्पती ने उससे इसका कारण पूछा तो वह बोला, "जिन आँखों ने मोहित हो कर मुझको ऐसे कुकर्म में लगाया था उनको मैंने बन्दी कर दिया है। भगवान की दया से आज आप लोगों के पवित्र सतसंग ने मेरा मोह हटा दिया है। मुझको अब ज्ञान हो गया है।"

देखो सती नारी का तेज और प्रभाव कैसा होता है! दुष्ट—महा दुष्ट—जिसे ऐसे नीच पाप की लालसा करने में तनिक भी लज्जा न हुई, सती का तेज देख कर दंग हो गया, उसके मुख से बात तक न निकली। सती के प्रचंड तेज के सामने दुष्ट की बुरी भावनाएँ फूस की नाई भक से जल गईं। अब तक बैठ कर मन ही मन जिस सुख की कल्पना करके वह पिशाच मत्त हो रहा था, वही सुख की सामग्री सामने आकर खड़ी है—उसकी उत्कट अभिलाषा को पूरी करने के लिये खड़ी है—परन्तु ठीक उसी समय सतियों के रक्षक अनाथों के नाथ परमेश्वर ने उसका सारा साहस छीन लिया। मुँह से उससे अच्छी तरह बोला तक न गया। सतीत्व के तेज की दमकती हुई शिखा को देख कर पाप मुँह

की चाल सुधारना

स्त्री का पत्र]

शंकरनगर,
कुआर, बदी, ५मी,
संवत १९६७।

हिसाब लगाकर देखा तो आज एक
से मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, आज
है। मुझे बहुत डर लग रहा था,
थी। किस रीति से मेरी प्रतिज्ञा पूरी
लिख सकूँगी, कहीं लिखने में भूल
चाहूँ और मतलब कुछ और ही न
चिन्ताओं से कैसी कुछ बेचैनी सी
ध आई कि मैं किसको पत्र लिख
भाग गए। और मेरी भूल चूक
तो हानि ही क्या है? जो तुम्हारे
बनने में कुछ संकोच होने लगे
ऐसी ही रह जाऊँगी—जन्म भर
करके मरना पड़ेगा। जो पति को
से डरेगी वह अपना हाल और

पर जो निबन्ध लिख भेजा है उसे पढ़
ने मिला। जिन पवित्र रमणियों की
करते हैं, उनका नाम लेने से भी अन्तः

कारण पवित्र हो जाता है। हाय ! हम सब उसी नारी-कुल में जन्म लेकर भी पवित्र कुल पर कालिख लगा रही हैं। स्वामी की सेवा करनी तो दूर रही, हम सब अपने सुख के लिये उनको कितने दुःख दिया करती हैं—उनको कैसी कैसी आपत्तियों में फँसा देती हैं। अपना सुख ही हमारे लिये सब कुछ है पर हम ऐसे अनमोल रत्न की मर्यादा नहीं समझते। ईश्वर ने हम सबको इतना नीचे क्यों गिरा दिया है, हम नहीं समझतीं। तुम्हारे निबन्ध को पढ़ते पढ़ते बहुत सी बातें मेरे मन में उठने लगीं थीं, पर आज वे सब याद नहीं पड़तीं। आज कुछ और ही लिखने के लिये जी अकुला रहा है। सब बातों के सिखाने वाले गुरू स्त्रियों के लिये स्वामी ही होते हैं। आज तुमसे एक बात का उपदेश चाहती हूँ। मेरी विनती सुन लो।

हो न हो तुमको याद होगा कि दारानगर में मेरी एक फूल-बहिन है। मैं ने उससे फूल का नाता जोड़ा है। उसका स्वभाव बहुत अच्छा है—बिचारी गऊ की सी सीधी है। रूपवती ऐसी है कि कुछ कहा नहीं जाता। लाल लाल गोरा गोरा रंग उसका सा विरला ही कहीं देख पड़ता है। पर भाग उसके बहुत खोटे हैं। उसका पति मदिरा पीता है, नशेबाज़ है, चाल चलन का भी बुरा है, क्रोधी है। बदचलनी से सारा धन दौलत फूँक दिया। पहले आप भी बड़ा सुन्दर था, पर अब उसकी सूरत तक बिगड़ गई है। मेरी सखी की ओर तो कभी आँखें उठा कर देखता तक नहीं है। कभी घर में आता भी है तो लाओ रुपये लाओ गहने पाते,

जो कुछ है सो दे दो। कुछ न लिले तो महा ऊधम मचा देता है, मार पीट तक करने लगता है। लिखते लिखते कलेजा फटा जाता है, उसने मेरी बहिन को अभी हाल ही में बहुत मार मारा है। वह सोच सोच कर सूख कर काठ हो गई है, चम्पाकली का सा उसका रंग अब काला पड़ गया है। अब तक वह अपने ससुराल में थी। पर सब समाचार सुन कर उसके बाप उसे अपने घर लिवा लाए हैं। वह कहते हैं कि उसे अब कभी ससुराल नहीं जाने देंगे। पर सखी चाहती है कि वहीं चली जावे। लाख बुरा क्यों न हो, स्वामी को वह छोड़ कर रहना नहीं चाहती। उसके बाप कहते हैं-- "ऐसी बात कभी मन में भी मत आने दे। समझ ले कि तू विधवा हो गई है।" बाप के मुँह से ऐसी बात सुन कर वह रात दिन रोया करती है। न भर पेट खाती है, न भर नींद सोती है। जिसका पति ऐसा खोटा हो उसे किसी बात में चैन नहीं मिलता। बाप भी वैसे ही हैं। उसकी दर्द को नहीं समझते। तुम कहोगे -तुम क्यों, हम भी यही कहती हैं--कि पिता को छोड़ पति ही से मेल रखना चाहिए। सती जी ने पति के लिये प्राण तज दिए थे। जब सुना कि पिता सभा के बीच में पति की निन्दा कर रहे हैं तब सती के कलेजे में पिता की भक्ति से पति का प्रेम ही बढ़ गया। उसने सभा में सबके सामने रो रो कर पिता को शाप दिया। मैं जानती हूँ कि ऐसे अवसर पर पिता की भक्ति से पति के प्रेम का मोल सती के लिये बहुत ज्यादा हो जाता है। पति लाख बुरे क्यों न हो, स्त्री के लिये वे ही देवता हैं।

दुर्बुद्धि से पति बुरे हो गए हैं तो उनको छोड़ देना स्त्री को नहीं चाहिए। हम लोगों ने ऐसी ही सलाह दी है कि बाप की रजाई से हो तो बहुत अच्छा, नहीं तो बेरजाई ही से सही, सखी अपने पति के पास चली जावे। अब मैं तुमसे पूछती हूँ, बताओ तो सही, उनकी चाल कैसे सुधर सकती है। दुलारी की नानी कहती है कि उसे कुछ टोना कर दो। उसके जान में कोई औघड़ है जो कुछ जन्तर मन्तर कर देगा जिससे उसका पति उसके वश में हो जायगा। पानी में कोई जड़ी पीस के पिलानी पड़ती है। ऐसी बात मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी—और न मुझे इसकी प्रतीत ही होती है। तुम प्रयागराज में रहते हो—बहुतों से जान पहचान है, किसीसे पूछ तो देखना, कोई इस रोग की भी दवा जानता है? देखें तुमही क्या कहते हो। तुमने तो मुझको बड़े बड़े ज्ञान की बातें बताई हैं, अबकी बार कोई अच्छा उपदेश दे सको तब मैं जानूँ कि तुम्हारी बात ठीक है।

हम लोग सब अच्छी तरह से हैं। अपनी क्षेम कुशल लिखने में देर मत करना।

तुम्हारे आशीर्वाद की भूखी
कमला।

[स्वामी का पत्र]

इलाहाबाद।
कुवार, बदी ६ मी।

प्यारी—तुम्हारे पत्र को पढ़ कर बहुत बड़ा आनन्द मिला। अपने हाथों से कभी पेड़ लगा कर तुमने उसका फल भी चक्खा होगा तो मेरे सुख की मात्रा कुछ कुछ अनुभव कर सकोगी। आज मुझको कैसा आनन्द मिल रहा है, सो मैं क्या लिखूँ। इस पत्र की प्रत्येक बात में, प्रति अक्षर में मानो मैं तुमको अपने सामने देख रहा हूँ। देखता हूँ मानो तुम दुःख भरे मुख से मेरे पास अपनी सखी की बात कह रही हो। देखो तो सही, विद्या सीखने से कैसा सुख मिलता है! नहीं मालूम, जान बूझ कर स्त्रियाँ क्यों ऐसे सुख से मुँह फेर लेती हैं।

आनन्द के ऊपर महा आनन्द इस बात का है कि अपने पहिले पहिल के पत्र में किसी वृथा बात को न लिख कर अवश्य जानने योग्य एक अच्छी चर्चा तुमने छेड़ी है। सोचा था कि तुम्हारे पत्र का उत्तर कुछ देर से दूँगा। परन्तु विषय की गम्भीरता और तुम्हारी सखी के दुर्भाग्य की बात सोच कर मुझसे नहीं रहा जाता। तुरन्त उत्तर देता हूँ।

तुम्हारी सखी ने अपने पति के पास रहना उचित समझा है यह बड़े ही सन्तोष की बात है। उनके अच्छे स्वभाव की बात सुन कर मैं बहुत सुखी हुआ। ऐसी स्त्रियाँ आज कल दुर्लभ हैं। उनके दुःख की कथा सुन कर मुझको भी दुःख हो रहा है। उनके पिता ने क्रोध में आ कर जो बात कही है वह बात ही नहीं है। परन्तु उनसे बिना पूछे ससुराल जाने की

जो सलाह दी है वह भी ठीक नहीं है। समझा कर अपनी सखी की माता से कहना, वे उसके पिता को भी समझा देंगी। सब झगड़ा मिट जायगा। झूठ मूठ पिता को दुःख देने से क्या होगा? दक्ष राजा ने अन्याय काम किया था इसी लिये सती ने उनको शाप दिया था। पर देखो जब महादेवजी ने सती के सामने दक्ष की निन्दा की थी तब सती जी चुप चाप उनकी बातों को नहीं सुन सकीं थीं। वह तो झूठी निन्दा नहीं थी। इस लिये सती जी के चित्र में पिता को भक्ति नहीं है जो ऐसा कहता है उसने सती का चित्र अच्छी तरह से नहीं समझा है। उस विचार से हमें कुछ मतलब नहीं है। अब जिस रीति से तुम्हारी सखी के पति की चाल सुधर सके उसे सोचना चाहिए। यन्त्र मन्त्र की जो बात तुमने लिखी है उसके विषय में मैं एक बात कहना चहता हूँ। तुमने महाभारत पढ़ा है न? जो न पढ़ा होगा, उसकी बहुत सी कथाएँ सुनी होंगी। श्रीकृष्णचन्द्र की स्त्री सत्यभामा ने द्रौपदी से पति को क्यों कर अपने वश में रखती है ऐसी कुछ बात पूछी थी, वह तुमको याद है? और द्रौपदी ने भी उसका कैसा उत्तर दिया था? द्रौपदी सच्चे वशीकरण का मन्त्र जानती थी—उसने स्वामी को बश में लाने का सच्चा उपाय बता दिया था। जड़ी घिस कर पानी में पिला देने की बात सुन कर मुझे बड़ा भय हो रहा है। देखना, कभी ऐसी खोटी बुद्धि को मत सुनना। मैं जानता हूँ बहुधा नासमझ बुढ़ियों की सलाह मान कर स्त्रियों ने अपने पति के प्राण तक लेलिये हैं। अभी तक इलाहाबाद में (कटरे में) एक स्त्री है जिसने

बशीकरण के लिये दवा खिला कर अपने स्वामी को जन्म भर के लिये पागल बना दिया था* । महाभारत में यह एक भारी पाप बतलाया गया है ।

पति की चाल को स्त्री से बढ़ कर दूसरा कोई नहीं सुधार सकता । पति को नीचे गिरते देख कर स्त्री को बहुत सावधान हो जाना चाहिए । और इस अवसर को स्त्री जैसा समझ सकती है दूसरा कोई ऐसा नहीं समझ सकता । इस समय में जहाँ तक हो सके स्वामी को अपनी आँखों के सामने रखना चाहिए, उनके मन को घर-गृहस्थी वा किसी दूसरे भारी काम में फँसा देने की चेष्टा करनी चाहिए । स्त्री इस तरह से काम करे कि स्वामी को इसका पता न लगने पावे। इस दशा में तनिक भी चूक या ढिलाई हुई तो सब काम बिगड़ जायगा । परन्तु चौकसी का समय बीत जाने पर स्वामी इतने नीचे गिर पड़ता है कि वह जल्दी फिर ऊपर को नहीं चढ़ सकता और तब भी अधिक चौकसी की जरूरत हो जाती है । स्त्री स्वामी के शरीर की आधी है । आधे अंग में घाव लग जावे तो दूसरे अंग को भी भारी दर्द होता है । इस बात को तुम लोग अच्छी तरह समझ सकती हो, ज्यादा लिखने से क्या होगा ? इस रोग का ठीक ठीक इलाज स्त्री ही के हाथ में होता है ।

रोगी जब रोग से जर्जर हो जाता है, उस समय वैद्य उसे छोड़ जावे तो उसकी कैसी दशा होती है तुमही समझ लो। जो स्वामी की ऐसी दशा में स्त्री उसे छोड़ देवें तो फिर

* यह एक सच्ची बात है ।

स्वामी के सुधरने की आशा नहीं रहती। स्त्री के लिये यह बड़ी भारी परीक्षा का समय है। इस परीक्षा में जिस किसी का पार उतरना कठिन है; पार उतर सकती है जो सचमुच स्त्री है। इस समय धीरज चाहिए, मेहनत करने से जी नहीं चुराना चाहिए। यही समय स्वामी के प्रति भक्ति, प्रेम, सब कुछ दिखलाने का है। जब तक हो सके उसके साथ साथ रहो, आठों पहर उसके मन की सी करती रहो। कभी तुम्हारा असन्तोष किसी तरह जाहिर न होने पावे। कभी कभी अच्छी बातें कहो, बात चीत के बहाने अच्छे उपदेश दिया करो। पर, खबरदार, कभी खुल्लम खुल्ला उपदेश न देने लगना। ऐसा करोगी तो तुम्हारा उपदेश अकारथ जायगा। स्वामी नाराज होकर तुम्हारी बात नहीं मानेगा। मैं जानता हूँ कि जब तक उसका मन पशुओं का सा हो रहा है तब तक इन सब बातों में से कुछ भी उसके मन में ठहरने नहीं पावेंगी। हो न हो वह नाराज़ हो जायगा, तुम्हारा उपहास करने लगेगा, कभी कभी तुम्हारे कोमल पवित्र शरीर पर मार पीट करने में भी नहीं सकुचावेगा। पर कुछ हानि नहीं—आशा मत छोड़ो। तब मन में और दुगना बल लेकर काम करने में लग जाओ। इस समय पल भर के लिये भी मान का सहारा लोगी तो किया कराया सब बिगड़ जायगा—वह हानि जन्म भर में भी पूरी न हो सकेगी। अन्त में पछतावे के मारे कलेजा फटा करेगा। ख़बरदार, भूलकर भी कोई कड़ी बात मत कहना, कभी धमकाने की इच्छा मत करना। बहुत सी स्त्रियाँ इसी भूल से अपने पाँव आप

कुल्हाड़ी मार लेती हैं। घर में तिरस्कार मिलेगा तो वह घर में आना तक बन्द कर देगा। दिन में एक बार भी जो भेट हो जाती थी, वह भी फिर न हो सकेगी। वह रात दिन बाहर ही बाहर रहा करेगा। अब तक पवित्रता के सत्संग से उसको जो कुछ थोड़ा बहुत डर या मन में ग्लानि होती थी वह भी दूर हो जायगी। वह बिलकुल मनमाना करने लगेगा। यह मैं पति पत्नी के लिये ही नहीं कहता हूँ। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है। भाई भाई की लड़ाई में यह बात बहुत अच्छी तरह देख पड़ती है। जब तक आमने सामने कोई लड़ाई नहीं होती, तब तक अलग होने का डर नहीं रहता। जिस दिन लज्जा टूट जाती है, उसी दिन एक के दो घर हो जाते हैं। म कई दुराचारियों की बात जानता हूँ। उसके पाप की बात ज़ाहिर हुई, और बड़ों ने उसका तिरस्कार किया नहीं कि वह बहुधा एक भयानक मनुष्य हो जाता है। जब तक प्रकृति के गुण से वह फिर आप से आप अच्छा होना न चाहे तब तक किसी की मजाल नहीं कि उसे अच्छी राह पर ले आवे। जिस भाँति दबाव बिना डाले मनुष्य का स्वभाव बहुधा धर्म का मार्ग नहीं छोड़ना चाहता, उसी भाँति जोर न दिखाया जावे तो मन फिर पुरानी राह पर आ जाता है। मेरी राय में तिरस्कार न करके बात ही बात में अच्छे उपदेशों का देना ही ठीक है। कभी कभी साधु और पवित्र लोगों के दृष्टान्त दिखलाने चाहिएँ। एक दिन, दो दिन, तीन दिन पीछे देखना उसका मन डोलने लगेगा। पवित्रता के उजियाले में पाप की डरावनी मूर्ति देखकर उसके मन में

घृणा और ग्लानि होने लगेगी। तुम्हारा मतलब पूरा हो जायगा।

मैं मानता हूँ, ऐसे भयंकर दुष्ट भी हैं जिनके मन लगातार बुरे काम करते करते पत्थर से भी ज्यादा कठिन हो गए हैं—किसी तरह की प्रीति के चिन्ह उन पर अङ्कित नहीं हो सकते—किसी बात से हृदय पर दाग हो नहीं जमता। परन्तु यह भी बिलकुल असाध्य रोग नहीं है, इसे भी मैंने आराम होते देखा है। मैं ने देखा है कि सती स्त्री ने छिपकर, सबसे अलग, चुप चाप रो रो कर ही इस पत्थर को मुलायम कर दिया है। देखा है कि अपने चरित्र की पवित्रता को दिखा कर ही सती स्त्री मतिमारे पति को फिर अच्छी राह पर ला सकी है। यह असाध्य नहीं है, असम्भव भी नहीं है। एक दिन में न सही, एक महीने में सही—या वर्ष दो वर्ष में सही मन की कामना अवश्य पूरी होगी। जिसकी स्त्री पवित्र है, वह कै दिन अपवित्र रह सकता है?

बुरे पति की चाल सुधारने के लिये स्त्री को बड़ा भारी धीरज चाहिए, लगातार परिश्रम करना चाहिए। हृदय का इतना बल सबको सहज में नहीं होता। इसके लिये ईश्वर से विनती करनी चाहिए। जो दुःखियों के सहायक हैं, दुर्बल के बल हैं, अनाथ के नाथ हैं, उनसे हृदय का बल माँग लो। वे दयामय हैं, दुःखी पर दया करेंगे ही करेंगे।

लिखते लिखते चिट्ठी बहुत बढ़ गई। पर इससे भी मन नहीं भरता—और भी अभी लिखने को जी चाहता है। क्या जानूँ, जो किसी दिन मैं ही अज्ञान के मोह से मत्त

होकर कुपथ में पड़ जाऊँ तो तुम मेरा शोधन कर सकोगी। अपनी वैतरणी आप ही करना अच्छा है न ? अच्छा, इस चिट्ठी में और कुछ न लिख कर बाकी दूसरी चिट्ठी के लिये रख छोड़ता हूँ।

मैं अच्छी तरह से हूँ। घर के समाचार लिखना। फिर कब पत्र आवेगा ? तुम्हारी सखी के लिये चित्त लगा रहेगा। जल्दी उनका हाल लिखना। एक बात तो मैं लिखना भूल ही गया। तुम्हारी चिट्ठी की भाषा बड़ी सुन्दर है। हृदय से निकली हुई भाषा ऐसी ही हुआ करती है। पर वर्णों में अशुद्धियाँ रह गई हैं। इसे भी सुधार लेने की चेष्टा करती रहना। जब कहीं किसी बात पर सन्देह होगा, झट से कोष खोल कर उसे देख लेना। और भी दो दोष हैं। दोष की बात कहता हूँ, गुस्सा न होना। इनका सुधार हो सकता है इसी लिये लिखता हूँ। तुम्हारे अक्षर एक से नहीं होते। कोई बड़ा हो जाता है कोई छोटा। लकीरें भी टेढ़ी हो जाती हैं। अभ्यास करोगी तो ये भी सुधर जावेंगे। बस आज यहीं तक।

आशीर्वादक,

मंगलदर्शन चतुर्वेदी।

अविश्वास—मान

[स्त्री की चिट्ठी]

शंकरनगर,
कुआर. बदी, चौदस,
सं० १९६७।

प्रियतम ! तुम्हारी चिट्ठी पढ़ के मुझे बहुत सुख मिला है। सखी को तुम्हारा उपदेश पाकर कितना ढाढ़स हुआ है सो लिखा नहीं जाता। तुमने जैसा जैसा कहा है उसे करने के लिये वह पति के घर जाने वाली है—आशीर्वाद करना कि उसका पति सुधर जावे।

इस बार कुछ और ही कथा लेकर मैं तुम्हारे सामने खड़ी होती हूँ। हमारे घर के पास जगन्नाथ तिवारी रहते हैं सो तो तुमको याद ही होगा। तिवारी जी की बेटी सुखदेवी के पास एक बहुत बुरी चिट्ठी आई है। तुमको मालूम ही है कि सुखदेवी अपने पति से कैसी प्रीति रखती है। उसके पति जहाँ रहते हैं वहाँ से एक चिट्ठी आई है। उसमें जो जो बातें लिखी हैं उनको कहना कठिन है। सब बातें मुँह से भी नहीं निकाली जा सकतीं। चिट्ठी देखते ही सुखदेवी मुँह फुला कर बैठ गई है। कहती है. और कभी उसको चिट्ठी नहीं लिखूँगी। वह कह रही है कि उसका स्वामी पराई स्त्री को ले कर रहता है, उसको चिट्ठी लिखना पाप है। मैंने उसको अपनी सखी की सब बातें कहीं तो उसने हँस कर टाल दी। बोली कि मर्द ऐसे ही कहा करते हैं। अब बताओ

इसका क्या किया जावे। पत्र का उत्तर तुरन्त देना। नहीं तो इधर आफत हो जावेगी।

यहाँ पर कुशल क्षेम है। अपना कुशल क्षेम लिखना।

तुम्हारी दासी
कमला।

[स्वामी का पत्र]

इलाहाबाद,
कुआर, सुदी, २,
संवत १९६७।

प्यारी!—तुम्हारी चिट्ठी मिली। जो बात तुमने लिखी है, इस पर कुछ कहने का विचार मेरा पहिले ही से था। पिछले पत्र में मैंने ऐसा कहा भी था। अवकाश न मिलने से अब तक नहीं लिख सका था। पर आज अपनी इच्छा पूरी करता हूँ।

सुखदेवी की बात सुन कर बड़ा खेद हुआ। वह स्वामी का विश्वास नहीं करती, यह अच्छी बात नहीं है। एक पत्र की बात को सच मान कर इतना अविश्वास करना ठीक नहीं है। पति-पत्नी का विश्वास परस्पर दृढ़ न हो तो काम नहीं चलता। अविश्वास शान्ति का विरोधी है—प्रेम का शत्रु है। पति-पत्नी में एक का दूसरे पर अविश्वास हो जावे तो घर में अशान्ति आ जाती है, प्रेम का बन्धन शिथिल हो जाता है। इस बात के सैंकड़ों सच्चे दृष्टान्त जो मैंने देखे

और सुने हैं, तुमको बता सकता हूँ। इस समय किसी पुस्तक में से एक दृष्टान्त लिखता हूँ। सुनो—

श्यामा अभी सत्रह वर्ष ही की है। पर इसी उम्र में उसने स्वामी की भक्ति करनी सीख ली है। उससे बड़ा प्रेम रखती है। उसके प्रेम की बात कही नहीं जा सकती। वह प्रेम बहुत गहरा है बहुत सच्चा है। स्वामी पर उसकी भक्ति भी अटल है, विश्वास भी उतना ही पक्का है। सच पूछो तो विश्वास के न होने से भक्ति भी नहीं हो सकती। पर स्वामी उसका बदचलन निकल गया। रोहिणी नाम की किसी विधवा से उसके लगाव की चर्चा जब सब जगह होने लगी, दासी ने आकर श्यामा से भी यह कह दी। श्यामा ने तब क्या किया जानती हो? वह तुम्हारी सुखदेवी की नाईं मुँह फुला कर मान करके बैठी न रही। उसने दासी की बात का विश्वास ही नहीं किया। पर जब दासी ने जोर से कहा, मेरी बात को तुम नहीं पतियातीं तो दुलरिया को बुला कर पूछ लो, श्यामा तब क्रोध और दुःख से रोने लगी। इस क्रोध का, इस दुःख का मतलब बहुत गहरा है। उसने क्रोध में आकर कहा—"ऐं! तेरा इतना बड़ा कलेजा! मेरे सामने मेरे ही पति की निन्दा! मेरे मन में पति की ओर से अविश्वास करा देने की चेष्टा!" उसके दुःख का मतलब यह था—"हाय! लोग क्यों मेरे पति की निन्दा करते हैं? धोई हुई चादर के से उसके चरित्र पर कालख का छींटा मारते हैं!" उसने झिड़क कर दासी से कहा, "किसी- से पूछना हो तू आप जाकर पूछ—क्या मैं तुझसी ओछी हूँ

कि अपने पति की बात दुलरिया चमारिन को बुला कर पूछूँगी ! अम्मा जी से कह कर तुझे अभी झाड़ू मार कर निकलवा दूँगी । हट जा मेरे सामने से ।" दासी को वहाँ से दूर करके श्यामा ऊपर को मुख उठा कर नेत्रों में जल भर कर दोनो हाथ जोड़ कर मन ही मन अपने स्वामी गोविन्द-लाल को पुकार कर कहने लगी--"हे मेरे गुरू ! तुम मेरे शिक्षक हो, धर्मज्ञ हो, तुम ही मेरे देवता हो ! क्या उस दिन तुमने यही बात मुझसे छिपाई थी ?" मन के भीतर जो मन है—हृदय की छिपी हुई ठौर जिसे कोई कभी देखने नहीं पाता—जहाँ आत्मप्रतारणा नहीं है—वहाँ तक टटोल कर श्यामा ने देखा—स्वामी की ओर अविश्वास का नाम तक नहीं पाया । देखा तुमने अन्तःकरण किसे कहते हैं ? सती नारी का हृदय ऐसा ही होता है । हाय ! ऐसा विश्वास न हो तो प्रणय नहीं रहता, शान्ति नहीं आ सकती । जिस कारण से क्यों न हो, जब गोविन्दलाल के चालचलन पर उसे कुछ सन्देह होने लगा, तब श्यामा का भी गोविन्दलाल की तरह पतन होने लगा । आठो पहर राई राई करके यह दुःख उसके कलेजे को जलाने लगा, जला कर उसे भस्म कर दिया, प्राण तक उसके लिये भारी होगए । श्यामा से और सहा न गया, किवाड़ बन्द करके वह धरती पर लोट कर रोने लगी । मन ही मन बोली "हे सन्देह-भंजन ! हे प्राणाधिक ! तुमही मेरे विश्वास हो ; आज किससे मैं पूछूँ, मेरे मन में किस बात का अवि-श्वास हो रहा है ? पर सब लोग इसी बात की चर्चा कर रहे हैं । सच न होता तो लोग कहते क्यों ? तुम यहाँ हो

नहीं, आज मेरा सन्देह कैसे दूर होगा? सन्देह ही दूर न हुआ--तो मैं मरती क्यों नहीं? इस सन्देह को ले कर कहीं जिया जाता है? प्राणेश्वर! लौट कर इस बात पर मुझे गाली मत देना कि श्यामा मुझसे बिना पूछे मर गई है। ओः! कलेजा फटा जाता है! इस अविश्वास के लिये श्यामा का कुछ दोष नहीं है, ऐसी बात मैं नहीं कहती; बस तुमको दिखा रही हूँ कि मेरा दुःख कितना भारी है, अविश्वास ने मेरे कलेजे में कैसी आग सुलगा दी है।" अविश्वास उत्पन्न होने पर जैसा हुआ करता है, वही हुआ, श्यामा के मन में मान आ गया। श्यामा ने गोविन्दलाल के पास अपना मान दिखलाने के लिये निर्मल मन से जो पत्र लिखा, उसे देख कर अचरज होने लगता है। गोविन्दलाल को पहले विश्वास न हुआ कि इस चिट्ठी को श्यामा ने लिखा है। गोविन्दलाल के भी मन में मान भर गया। विष के पेड़ ने जड़ पकड़ ली। इसका फल भी बुरा ही हुआ। गोविन्दलाल पहले स्वेच्छाचारी नहीं था। और मैं समझता हूँ कि श्यामा समझदार होती तो वह सुधर भी जाता। श्यामा आप चाहे जितनी अच्छी रही हो, हम उसे बुद्धिमती नहीं कह सकते। यह सच है कि उसकी दुर्दशा को देख कर आँखों में आसूँ भर आते हैं, परन्तु दूसरी स्त्रियों को हम उसके काम की नकल उतारने को नहीं कह सकते। श्यामा अपने स्वामी को विश्वास के योग्य जान कर विश्वास करती थी; ऐसे विश्वास की प्रशंसा ही क्या? प्रशंसा हो तो गोविन्दलाल की होनी चाहिए, श्यामा की नहीं। गोविन्दलाल आप नेकचलन था इससे उसकी प्रशंसा होनी चाहिए। वे समझे बूझे उससे एक चूक

हो गई, बस उस पर से श्यामा का विश्वास हट गया। श्यामा ने अपना विश्वास तो जरा सी बात से हटा ही लिया, ऊपर से वह मान करने लगी। वह मान न करती तो गोविन्द लाल का चालचलन सचमुच न विगड़ने पाता। यह सच है कि जब उसकी चालचलन पर श्यामा को पहले पहल अविश्वास हुआ तभी फूल के भीतर कीड़ा घुस गया; निर्मल आकाश में एक टुकड़ा बादल छाने लगा। पर उस समय श्यामा मान न करती तो इस तरह से सत्यानाश न होता; बादल के साथ इतनी भारी आँधी न आती। हुआ यह, कि गोविन्दलाल खिसिया गया और जिस रोहिणी से अब तक उसको दो एक बार यों ही कुछ बात चीत भर होने पाई थी वह—श्यामा से अपना मन टूट जाने से—अब उसी रोहिणी की ओर बड़े वेग से झुक पड़ा और होते होते, बात बढ़ जाने पर, वह रोहिणी को अपने साथ लेकर दूसरी जगह जाकर सुख से रहने लगा। गोविन्दलाल श्यामा को छोड़ कर चला गया। इससे हानि किसकी हुई ? श्यामा पहले से सम्हली रहती तो क्या यहाँ तक बात बढ़ने पाती ?

आज कल घर घर पति पत्नियों में अविश्वास और मान की बड़ी भरमार देख पड़ती है। प्रेम का ऐसा शत्रु और नहीं है, और घर में आग लगाने के लिये इनसे बढ़ कर दूसरा मसाला नहीं देख पड़ता। ऐसी स्त्री आज कल कौन है जो स्वामी को बदलचन देखती हुई भी देवता को तरह उसको मानती और उसके मन की बात करने में उसकी सहायता कर सकती हो ? ऐसी स्त्री आज कल नहीं है; होनी चाहिये कि नहीं, यह भी हम नहीं कहते। हमें बस इतना ही

कहना है कि स्वामी बद्चलन भी हो, उस पर मान करने से काम नहीँ चलता। मान जन्म भर के लिये स्त्री को स्वामी के प्यार से अलग कर देता है। और स्त्री पर सच्ची प्यार जब तक पैदा न हो, उसके असन्तोष से जब तक स्वामी को दुःख न मिले, तब तक उसके चाल सुधरने की भी आशा नहीँ रहती। और अविश्वास की बात कहो तो—अविश्वास अच्छे चाल वाले को भी बदचलन बना देता है। हाँ! जो सच्चा नेक-चलन है वह कभी इन सब कारणोँ से बद्चलन नहीँ बनेगा। परन्तु ऐसे पक्के आदमी कितने मिलते हैँ? हम लोग बहुधा जिनको चरित्रशाली कहा करते हैँ, उनमेँ से बहुतेरे लालच के सामने अपना चाल ठीक नहीँ रख सकेँगे, उनको घटना और अवसर के वशीभूत होकर नामवरी पाने के लिये ही अपना चरित्र अच्छा बनाना पड़ता है। और जब चरित्र-शाली लोगोँ की बदनामी फैल जाती है तो वे बहुधा बहुतही खोटे—कलङ्कित—हो जाते हैँ। तुम कहोगी कि इस तरह से जबरदस्ती चाल को सुधारे रहने से क्या फायदा है? फायदा है क्योँ नहीँ! सच्चे मन के दोषोँ को सुधारना जितना सम्भव है—कार्य के दोषोँ के सुधरने की उतनी सम्भावना नहीँ होती। और मन के दोषोँ से समाज को उतनी हानि नहीँ पहुँचती; कार्य के दोषोँ ही से हानि होती है। मन मेँ बुरा चरित्र होने पर भी काम मेँ चाल ठीक रह सके तो उसे समाज को बहुत नुकसान नहीँ पहुँचता। और धीरे धीरे ऐसे आदमी को बुरा काम करने मेँ आप ही घृणा होने लगती है।

चिट्ठी बढ़ी जाती है। तब भी सब बातें मैं नहीं लिख सका। तुम सुखदेवी से दो बातें कह देना। पहली बात यह है कि सुखी परिवार के बहुत से शत्रु हुआ करते हैं। पराया सुख उनसे देखा नहीं जाता। उस सुख को नष्ट कर देने के लिये दुष्ट लोग बहुधा झूठ मूठ बिगाड़ करवा देने का यत्न किया करते हैं। दूसरी बात, जो सचमुच ही उसका पति बुरी राह पर चलने लगा हो तो क्रोध करना ठीक नहीं है। तुम्हारी सखी ने जैसा किया है वैसा ही सुखदेवी को भी करना चाहिए। नहीं तो पति हाथ से बिलकुल निकल जावेगा तो सुखदेवी ही को हानि उठानी पड़ेगी।

मैं अच्छी तरह हूँ। सोमवार तक तुमसे मिलने की इच्छा है। तब तक पत्र लिखने की जरूरत नहीं है।

आशीर्वादक—

मंगलदर्शन चतुर्वेदी।

विवाह

स्वामी—हो तो अच्छी तरह से ? चिट्ठियाँ सब ठीक समय पर मिल जाती थीं न ? तुम्हारी सखी और सुखदेवी कुशल से हैं ? उनका क्या हाल है ? तुम बोलतीं क्यों नहीं ?

स्त्री—बहुत दिनों पीछे भेट होने पर शरीर और मन दोनो में कुछ गड़बड़ मच जाता है। शरीर अपने वश में नहीं रहता, मन में चकाचौंध सी लग जाती है। मुख से बात नहीं निकलती। हम लोग सब अच्छे हैं। तुम तो राजी खुशी थे न ? चिट्ठियाँ सब मिल चुकी है। कुछ बहुत सी चिट्ठियाँ तो तुमने लिखीं हीं नहीं थीं, फिर ठीक ठीक पहुँचतीं क्यों नहीं ? सखी और सुखदेवी दोनो अच्छी हैं, दोनो भगवान से तुम्हारी बढ़ती चाह रही हैं।

स्वामी—ऐसे उत्तर से मेरा मन नहीं भरता। उनका पूरा पूरा हाल मुझसे कहो।

स्त्री अच्छा लो, मैं कहती हूँ, तुम सुनो। सखी तो तुम्हारी चिट्ठी पाते ही पति के घर चली गई। उसके पति उस समय घर पर नहीं थे। घर आकर वह सखी को देखकर गालियाँ देने लगे, और मायके चली आने को कहा। वह चुपचाप रोती रही—कुछ भी न बोली। कुछ जवाब न पाकर स्वामी आपही थोड़ी देर पीछे चुप हो गए। वह दिन इसी तरह से बीत गया। दूसरे दिन से तुमने जैसे जैसे बताई थी वैसे ही सब काम होने लगा। देख सुन कर स्वामी का मन भी कुछ कुछ नरम होने लगा। एक दिन उनके हाथ

मेँ वर्च कुछ न रहा। जब कहीँ पैसे कौड़ी का ठिकाना न रहा तो वह घर आकर बड़े सोच मेँ चुप चाप बैठ गए। हो न हो उस समय उनको पहली बातेँ याद आईँ। अब की और तब की दशा मेँ कुछ अन्तर तो उनको भी जान पड़ा, पर अब तक उसकी कुछ परवा नहीँ की थी। अब सब बातेँ देख सुन कर और बाहर की दोस्ती मेँ कुछ अन्तर पा कर उनका जोश कुछ ठण्ढा पड़ गया। और सखी को भी अब कुछ कुछ चाहने लगे। तुमने सच लिखा था कि प्रीति हो जाने से ऐसे समय मेँ बड़ा लाभ होता है। वह बैठे बैठे अपनी दशा को सोच रहे थे। इतने मेँ सखी ने उनको देख लिया। देखते ही असली बात के समझ लेने मेँ उसको देर न लगी। हाथोँ मेँ दो कड़े थे, उनको निकाल कर सामने रख दिया। बाबु साहब ने सब गहने ले लिये थे, यही कड़े बच गए थे, इन पर अब तक उनकी नजर नहीँ पड़ी थी। कड़ोँ के रखते ही उनकी आँखोँ मेँ आँसू भर आए। दिन भर उन्होँने रो रो कर बिताया, पर तब से अब और कुछ खुटाई नहीँ करते। सखी को वह अब पहले से भी दुगना चाहा करते हैँ।

स्वामी—ऐसा ही हुआ करता है। मैँने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि साधुता यानी भला स्वभाव ही मनुष्य की प्रकृति है—असाधुता विकृति मात्र है। लोग बुरा काम करते हैँ जबरदस्ती से;—कई एक प्रबल इन्द्रियोँ की शक्ति से हार कर। समय पाकर किसी न किसी सबब से जब वह शक्ति कमजोर हो जाती है तब इन्द्रियाँ भी शान्त हो जाती

हैं पछतावे के सहारे से हृदय फिर शुद्ध हो जाता है। तब ऐसा होता है कि पहले वह जितना अच्छा था अब वह उससे दुगना अच्छा बन जाता है। कारण इसका यह है कि पहले अच्छा होने पर भी उसे लालच के साथ लड़ाई करनी पड़ती थी। उस लड़ाई में इन्द्रियाँ सदा उसकी विरोधी बनी रहती थीं, इस लिये उसको डर कर रहना पड़ता था। कभी तो वह लालच से बच कर साधुता की रक्षा करता था, और कभी सांसारिक ज्ञान और बदनामी के डर से लालच को दबा देता था। और कभी आप हार कर लालच के चंगुल में फँस जाता था। परन्तु भोग की समाप्ति होने पर वह जब फिर साधु हुआ, इन्द्रियाँ अपने भोग की सामग्रियों और उनसे मिलने वाले सुख को असार जान कर अब उसके हृदय का विरोध नहीं करतीं। इस लिये अब वह अनायास लालच की आकर्षणी शक्ति को हरा सकता है। एक बात और भी याद रखनी चाहिए। असली साधुता को देखने के लिये हमको लालच के सामने खड़े हो कर अपनी जाँच करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे बराबर दुर्बल मनुष्यों के लिये लालच से दूर भागना ही ठीक है। ऐसी लड़ाई में भागने ही में बहादुरी है। जो जितेन्द्रिय है वह जो चाहे सो किया करे, पर हम लोग इन्द्रिय-सेवक हैं, हमसे उतना नहीं हो सकेगा। जहर पीने का अभ्यास करके अमर बनने की चेष्टा करना बेवकूफी ही है। फिर तुम्हारी सुखदेवी जी ने क्या किया ?

स्त्री—सुखदेवी पहले तो कुछ कुनमुनाई, पर तुम्हारी चिट्ठी अन्त तक सुन कर उसको भी कुछ कुछ ज्ञान हुआ।

उसके पास जो चिट्ठी आई थी उसको उसने अपने स्वामी के पास भेज दिया है। अब सुना जाता है कि उसमें सब बातें झूठ लिखी थीं। स्वामी के किसी कपटी मित्र ने दुशमनी से वह चिट्ठी लिखी थी।

स्वामी—मुझे पहले ही इस बात का शक हो गया था। संसार में ऐसे दुराचारी भी होते हैं। अच्छा आज इन बातों को रहने दो। बन पड़ा तो फिर एक दिन कहूँगा। कल मुझे एक बार महाजनी टोले जाना पड़ेगा।

स्त्री—क्यों ?

स्वामी—मोतीलाल के लिये एक लड़की देखनी है।

स्त्री—वाह ! मोतीलाल जी आप क्यों नहीं जाते ?

स्वामी—यह कैसी बात कहती हो ? विवाह करना उसका काम है, पर लड़की का ठहराना उसका काम नहीं है। जब उसके अपनाइत में कोई नहीं है तो यह काम हमारे से मित्रों ही का है।

स्त्री—तुम जिसे पसन्द करोगे उसे वह पसन्द न करें तब ?

स्वामी—पसन्द क्यों न करेंगे ? क्या हम लोग अच्छी लड़की को नहीं जान सकते ?

स्त्री—जानते तो हो। पर मोतीलाल जी अब बालक तो हैं नहीं जो वह पसन्द न कर सकें ! हर एक मनुष्य की पसन्द न्यारी न्यारी होती है। अपनी पसन्द की हुई स्त्री में ही प्रीति हो सकती है।

स्वामी—यह झूठ बात है। कर्त्तव्य समझने वाले दम्पती में प्रीति आपसे आप हो जाती है। इसका कारण तो मैं पहले ही समझा चुका हूँ।

स्त्री—सो तो ठीक है। पर कहीं कोई किसीके मन को न पहचान सके तो अनबन होने का डर रहता है। तुम्हारी क्या राय है?

स्वामी—मेरी राय सुनोगी? मैं कहता हूँ कि पति पत्नी का विवाह के पहले एक दूसरे को देखने की रीति कभी नहीं चलानी चाहिए। प्रीति या प्रेम से दो प्रकार के मोह हो जाते हैं—रूप का मोह और गुणों का मोह। रूप का मोह अकस्मात् पैदा होता है, पर थोड़े ही काल तक ठहरता है। गुणों का मोह बहुत दिनों में होता है, पर ठहरता भी बहुत दिनों तक है। हम जिसे मोह कहा करते हैं वह बहुधा रूप से होता है—वह इन्द्रियों का मोह है। विवाह के पहले पति पत्नी में जान पहिचान हो जाने से जो मोह पैदा होता है, वह रूप का मोह—इन्द्रियों का मोह है। वह अवस्था के अनुसार होता है। नए फ़ैशन के बाबू साहब लोग इस मोह को गुण का मोह समझ कर अपने मन को धोखा दिया करते हैं। इन लोगों को मैं इस लिये बहुत दोषी ठहराना नहीं चाहता। क्योंकि इन्द्रियों के मोह और हृदय के मोह को अलग अलग समझ सकना बहुत कठिन काम है; बहुत थोड़े आदमी ही ऐसा समझ सकते हैं। शेक्सपीयर के रोमियो-जुलियट की प्रेम की कहानी हिन्दी में भी छप चुकी है।* तुमने शायद उसे पढ़ा

* 'गृहिणी' के लेखक ने इसको भी हिन्दी में तैयार किया है।

होगा। बहुतों की अन्त में रोमियो की सी दुर्दशा हुआ करती है। फिर कुछ दिनों पीछे रूप का मोह मिट जाता है, इन्द्रियों का मोह शान्त हो जाता है। यदि ऐसे समय में गुणों का मोह पैदा हो जावे तभी तो कुशल है, नहीं तो अन्त में वह विवाह विष उगलने लगता है। तुम कह सकती हो कि ऐसी दशा तो सब विवाहों में हो सकती है! यह बात ठीक नहीं है। दूसरी विधि के विवाह से स्त्री और पुरुष दोनों जान लेते हैं कि अच्छा हो चाहे बुरा हो, इससे प्रीति करनी ही पड़ेगी। जो बात हो गई है वह अब टल नहीं सकती। तुम पूछ सकती हो कि बुरे के साथ कैसे मन मिल सकता है? मैं कहता हूँ कि यह हो सकता है। बेटा कुपूत हो तो क्या माता उसे प्यार नहीं करती? उससे मेरा मन नहीं मिलता, उसको प्यार करने को जी नहीं चाहता, यह बात प्रेमियों की नहीं है। हमारा स्वभाव यही है कि सबके साथ हम प्रीति करें। इसका उलटा अभ्यास और शिक्षा के दोष ही से हो सकता है। तुम एक बात और भी कह सकती हो कि ढोल गले पड़ जावे तो उसे बिना बजाए कोई क्या करेगा; ऐसी प्रीति जबरदस्ती की प्रीति ठहरी, इससे क्या प्रयोजन है? मैं कहता हूँ कि प्रयोजन है। यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ कि सबसे प्रीति करना हमारे लिये सम्भव है; पर सबसे प्रीति नहीं होती है सो हमारे अभ्यास और शिक्षा का दोष है। यदि अभ्यास के दोष से कोई बात हो जावे तो अभ्यास ही से उसके सुधार लेने में क्या हानि है? मान लो कि पहले तुमको पुस्तक पढ़ने से प्रीति नहीं

थी. अब पढ़ते पढ़ते प्रीति बहुत बढ़ गई है। क्या इस प्रीति को प्रीति न कहोगी? अथवा इस प्रीति की निन्दा करोगी? जो हमारा कर्त्तव्य है—जिसे करना हमें पड़ेगा—उसे जिस तरह से हो सके पूरा करना चाहिए। फिर पीछे से जो प्रीति हो जाती है क्या अन्त में उसमें अभ्यास का कोई चिन्ह दिखाई पड़ता है? एक बात तो यह रही। अब एक दूसरी बात भी देखो। इससे समाज की उन्नति होती है। समाज में सब लोग मन मानी घर जानी करने लगें तो कभी अच्छा नहीं होगा। मन माना तो मैंने उससे प्रीति कर ली, मन न माना तो नहीं की। समाज में रहते हुए उसका भला चाहने वाले ऐसा नहीं कह सकते। साधारण रीति से भी ऐसा होने में बड़े बड़े दोष देख पड़ते हैं। अच्छा, जिस कन्या से विवाह करने को मोतीलाल का जी चाहता है, श्यामलाल भी उसी कन्या के साथ विवाह करना चाहता है। दोनो सोचते हैं कि जब तक उस कन्या के साथ परिणय न होगा तब तक सच्चा प्रेम—सच्चा सुख नहीं मिलेगा। बताओ तो, ऐसी दशा में क्या किया जावे? इसी लिये मैं कहता हूँ कि विवाह के विषय में पति पत्नी दोनो के मन में इस बात का ध्यान रहना ज़रूरी बात है कि उन्हें एक दूसरे को प्यार करना होगा; ऐसा होने से समाज का भला होगा और उन दोनो का भी भला होगा। सच पूछो तो उन दोनो का भला न हो सके तो समाज का भी भला नहीं हो सकता। मैं तो यही समझता हूँ कि सब बातों को भूल कर इसी बात पर अटल रहना चाहिए कि पति-पत्नी कैसी भी हों, उनका आपस में प्रीति रखनी

होगी और इससे उनका और उनकी जाति वा समाज का भी उपकार होगा। शास्त्रों में तो पति से प्रीति रखने, उसकी सेवा और भक्ति करने की विधि है ही। और स्त्री को आदर करने की बिधि भी स्वामी के लिये शास्त्रों में पाई जाती है। विवाह के पहिले वर कन्या का परस्पर न देखना ही अच्छा है। परन्तु हाँ, वर के योग्य कन्या चुनी जावे, इस विषय पर उसके माता पिता और मित्रों को ध्यान देना चाहिए। अब मेरी क्या राय है, तुमने सुन ली न ?

स्त्री सुन ली—सुन कर सुख मिला। प्रीति करने के लिये विवाह के पहले परिचय का हो जाना प्रयोजन है यह मैं भी नहीं मानती। क्या तुमसे मुझे प्रीति नहीं है ? या तुमही मुझको नहीं चाहते हो ? पति पत्नी में प्रीति विना उपजे नहीं रह सकती। ऐसा तो विधाता का नियम ही जान पड़ता है। इस बात को बहुत बढ़ाना अच्छा नहीं लगता। अच्छा बचपन में विवाह होने पर तुम्हारा क्या मत है ?

स्वामी—अपना मत तो मैं पहले ही कह चुका हूँ। अकेली प्रीति के लिये "बाल्य विवाह" का बुरा होना मैं नहीं मानता। परन्तु इसको छोड़ और भी कारण हैं जिससे बाल्य विवाह अच्छा नहीं है। यह मैंने पुरुष के लिये कहा। लड़की की बात न्यारी है। उसके लिये बाल्य विवाह से बुराई के बदले भलाई का अंश अधिक है। समझा ?

स्त्री—क्या ?

स्वामी—पति पत्नी के विषय में शास्त्रकारों का मत।

स्त्री—यह तो बहुत अच्छी बात है। तुम इसे जानते हो?

स्वामी—मुझे याद नहीं है। उस किताब को तो उठा लो।

स्त्री—यह लो।

स्वामी—इसमें से चुन चुन कर तुमको सुनाउँगा। इसमें बहुधा स्त्रियों के करने की ही बातें हैं। इससे पढ़ने में मुझे कुछ लज्जा सी होती है, कि न जाने तुम क्या कहोगी!

स्त्री—कहूँगी मैं क्या? मैं तो पत्नी के कर्त्तव्यों ही को सुनना चाहती हूँ। तुम लोगों के कर्त्तव्यों को सुन कर क्या करूँगी? क्या मैं तुम्हारी शिक्षक हूँ जो दिन रात ताकती रहूँगी कि तुमने मेरे साथ उचित वर्त्ताव किया या नहीं? मैं तो अपना काम आगे समझती हूँ; फिर जो बन पड़ेगा तो तुम्हारे काम पर भी दृष्टि रक्खा करूँगी। इस समय मेरा अपना कर्त्तव्य आगे है, तुम्हारा पीछे है। क्योंकि मेरा कर्त्तव्य है तुम्हारे साथ, तुम्हारा कर्त्तव्य है मेरे साथ। आगे तुम हो कि आगे मैं हूँ?

स्वामी—तुम्हारी बातें सुन कर कलेजे में ठंढक भरने लगती है। तुम्हारी सी स्त्री से इस बात के कहने का प्रयोजन नहीं है कि मैं क्यों इतना सुखी हुआ। इस बात से नहीं कि तुम मुझ पर भक्ति और प्रेम रखती हो; वरं मेरे सुख का कारण यह है कि तुमको इतना ज्ञान हो गया है, तुम अपने कर्त्तव्य को पहचानती हो।

स्त्री—अब, बड़ाई पीछे करना, पहले पढ़ो तो।

स्वामी—जो स्वामी के अप्रिय काम को करती है, उसके तप, उपवास व्रत और दान आदि सब निष्फल होते हैं।

स्वामी की पूजा से श्रीकृष्ण की पूजा होती है। पति नाम धारी स्वयं हरि ही पतिव्रताओं के व्रत हैं।

सब प्रकार के दान, सब प्रकार के यज्ञ, सब प्रकार के तीर्थ दर्शन, सब व्रत तप और उपवास, सब देवताओं की पूजा, सब धर्म और सत्य, इनमें से एक भी स्वामी-सेवा के सोलहवें अंश के भी बराबर नहीं है।

पुण्यभूमि भारतवर्ष में जो रमणी स्वामी की सेवा करती है वह स्वामी के साथ वैकुंठ को जाती है।

बुरे कुल की जन्मी हुई स्त्री ही स्वामी का अप्रिय काम करती है और स्वामी से अप्रिय वाणी बोलती है। इसका फल सुनो। जब तक चन्द्र सूर्य विद्यमान रहेंगे तब तक उसको कुम्भीपाक नरक में रहना पड़ेगा; अन्त में उसको पति पुत्रों से रहित चाँडाली हो कर जन्म लेना पड़ेगा।

क्या इस लोक में, क्या पर लोक में, कुलवती स्त्री का स्वामी ही श्रेष्ठ मित्र है। वही श्रेष्ठ गुरू है। स्वामी से बड़ा और कोई नहीं है। देवपूजा, व्रत, दान, तप, उपवास, जप, सब तीर्थों में स्नान, सब यज्ञों की दीक्षा, पृथिवी की प्रदक्षिणा, ब्राह्मण-भोजन, अतिथि-सेवा ये सब पति-सेवा के सोलहवें हिस्से के भी बराबर नहीं हैं। स्त्रियों के लिये पति-सेवा से श्रेष्ठ धर्म वेद में भी नहीं सुना जाता है। क्या सोते, क्या जगते, सब समय नारायण से बढ़ कर वह स्वामी की पूजा, उनके पाद-पद्मों के दर्शन और सेवा करे। परिहास से, भ्रम से, अथवा घृणा से, सामने वा पीछे, स्वामी को कटु वचन न कहे। श्रुति में (वेद में) इच्छा पूर्वक कटु बोलने वाली

असती स्त्री के लिये प्रायश्चित्त ही नहीँ लिखा है; उसको नरक होगा। सर्व धर्मों की करनेवाली हो कर भी जो स्वामी को कटु वचन कहती है उसके सौ जन्म के किए हुए पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाते हैँ।

पति कुरूप होवे, पतित होवे, दरिद्र होवे, रोगी होवे, और जड़ ही होवे, सत् कुल मेँ जन्मी हुई स्त्री उसको विष्णु के समान देखे।

पुत्र, पिता, मित्र वा सहोदर, इनमेँ से कोई भी स्त्री के पास स्वामी के बराबर नहीँ है।

स्त्री—अच्छा, पतिव्रता किसे कहते हैँ ? और उसका धर्म क्या है ? धर्म-शास्त्रोँ मेँ से इस बात को बताओ।

स्वामी—जो स्त्री स्वामी के दुःखी होने से दुःखी होती है, स्वामी के सुखी होने से सुखी होती है, स्वामी के परदेश रहने से जो दुबली हो जाती है और मन मेँ दुःखी रहती है, स्वामी के मरने से जिसकी मृत्यु होती है, वही यथार्थ साध्वी और पतिव्रता है।

पतिव्रता का धर्म यह है—

पतिव्रता स्त्री स्वामी की आज्ञानुसार सदा उसको भोजन करावेगी। व्रत, तपस्या, देवपूजा, इन सबोँ को त्याग कर स्वामी को प्रसन्न रखने के लिये यत्न करेगी। सर्वदा उसकी चरण-सेवा और स्तुति करेगी। और पति की आज्ञा विना कोई काम न करेगी। स्वामी को नारायण से बढ़ कर समझेगी। सुव्रता स्त्री परपुरुष का गृह, अच्छे वस्त्रवाला परपुरुष, महोत्सव, नृत्य, गीत और परपुरुष की क्रीड़ा—

ये सब कुछ भी नहीँ देखती है। स्वामी जो वस्तु भोजन करे, वह भी उसी वस्तु को खावे। वह कभी स्वामी का संग नहीँ छोड़ती। साध्वी रमणी स्वामी के कहे का उत्तर नहीँ देती, कभी उस पर कोप नहीँ करती, कभी उसकी ताड़ना नहीँ करती। वह भूखे स्वामी को भोजन कराती है, उसे तृप्त करने के लिये पीने की वस्तु देती है, प्रयोजन रहते भी सोए हुए स्वामी को नहीँ जगाती। सती स्त्री स्वामी को पुत्र से भी सौ गुना अधिक प्यार करती है। कुलवती स्त्रियोँ का पति ही मित्र है, पति ही गति है और पति ही देवता है। साध्वी रमणी कुछ कुशल देखे तो आनन्द भरे मुख से अमृत की भांति पति की ओर यत्न और भक्ति से देखती है।

शास्त्रकारोँ की यह सब विधियाँ पति-पत्नी की एकता व्यञ्जक हैँ। हिन्दुओँ में जो पति है वही पत्नी है, दोनो मेँ कुछ भेद नहीँ है. इसी लिये दोनो के लिये अलग अलग धर्म नहीँ बताए गए हैँ। जो एक का धर्म है वही दूसरे का भी धर्म है। इन दोनो मेँ से पुरुष को ज्ञान अधिक होता है स्त्री को भक्ति अधिक होती है, इसी लिये ज्ञान का काम पुरुष के भाग मेँ है, और भक्ति का काम स्त्री के भाग मेँ है; धर्म अधर्म का निर्णय करना पुरुष के भाग मेँ है, और निर्णय हो जाने पर पति की आज्ञाधीन रह कर उसका पालन करना स्त्री के भाग मेँ है। पुरुष ज्ञान के बल से इन्द्रियोँ से अतीत विषय की धारणा कर सकता है, इसीसे पति के उपास्य देवता इन्द्रियातीत परमेश्वर हैँ; रमणी को बहुधा उतना ज्ञान नहीँ होता, परन्तु वह भक्ति के बल से पति ही को

परमेश्वर का अंश समझ कर पूजा कर सकती है, इसलिये पत्नी के देवता पति हैं। जिनको भले बुरे का विचार करना होगा इन्द्रियातीत की धारणा करनी होगी, उनमें ज्ञान प्रधान है; और जिनको साधारण मनुष्य ही को देवता समझ कर चलना होगा उनमें भक्ति प्रधान है। शास्त्रकार लोग इस बात को अच्छी तरह समझते थे, इसी लिये विधि भी उन्होंने वैसी ही दी है।

स्त्री—यह सच ही है। हमलोग उतना क्या समझें! तुम लोग जो कुछ करने कहोगे उसीको धर्म मान कर हम उनका पालन करेंगी, यही हमारा धर्म है। तुम लोगों की आज्ञा मानना और सेवा को छोड़ और हमारे लिये कौन सा धर्म है?

निन्दा, डाह

स्वामी—कैसा देख आईं ?

स्त्री—बहुत अच्छा।

स्वामी—यह तो एक बात है ही। इसके आगे ?

स्त्री—इसके आगे भी कहना होगा ?

स्वामी—हाँ, हाँ। तुम्हारा जी देखने को चाहे, और हम सुन भी न पावें ?

स्त्री—तब सुनो। आगे अपनी बात कह लूँ, फिर दूसरी बातें कहूँगी।

स्वामी—कहो।

स्त्री—लड़की देखने में बुरी नहीं है, पर कुछ बहुत सुन्दर भी नहीं कही जा सकती। स्वभाव की बात अभी मैं कैसे कहूँ—कुछ दिन पास बिना रहे स्वभाव नहीं जाना जा सकता। दूर से जिसका चरित्र बेदाग़ मालूम पड़ता है, सामने आने पर उसमें दाग धब्बे देख पड़ना कुछ कठिन नहीं है। और दूर से जो कुचालवाली समझी जाती है, पास आने पर वही गुणों की खान बन कर मन को मोह सकती है।

स्वामी—अच्छा कह रही हो। चाल चलन की बात बाहरवाले जो कुछ कहें वह ठीक नहीं। अच्छा, और सबों ने क्या कहा ?

स्त्री—मैं नहीं कहूँगी। तुम हँसने लगोगे।

स्वामी—झूठ मूठ नहीँ हँसूँगा। हँसने से कुछ फायदा न हो तो मैँ क्योँ हँसने लगा ?

स्त्री—सब लोगोँ ने क्या कहा, सुनो। सबसे पहले रामलाल की नानी ने कहा—"वह बड़ी बेहया है; रंग साँवला ज़रूर है, पर आँख कान की सुन्दर नहीँ है; नाक चपटी है, आँखेँ छोटी हैँ; हाथ पाँव लंबे लंबे हैँ।" ऐसे ही और भी बहुत कुछ ऐब उसने बताए। लालमणि की माँ ने कहा, "दुलहिन खूब गोरी है, देखने मेँ बड़ी सुन्दर है। नाक तनिक सी छोटी है, पर एका एकी यह बात नहीँ देख पड़ती।" और कितना कहूँ। कोई अच्छी कहती है, कोई कुछ न कुछ ऐब बताती है। ऐब निकालने वाली ही ज्यादा हैँ। दुलहिन के ससुरालवालोँ ही मेँ से कोई कोई अच्छा बताती हैँ।

स्वामी—तुम लोगोँ मेँ यह बड़ी बुरी आदत है। जब काम धन्धा नहीँ रहता, किसीकी निन्दा करने लगती हो। हंस को कौआ बनाया करती हो, घोड़े को गदहा बना देती हो। जहाँ कहीँ दस पाँच स्त्रियाँ एक जगह इकट्ठी हुईँ, वहीँ पराई चर्चा, पराई निन्दा होने लगती है। बताओ, इसकी क्या ज़रूरत है ?

स्त्री—ज़रूरत तो मैँ नहीँ जानती। पर हाँ, पराई निन्दा से कुछ सुख ज़रूर मिलता है।

स्वामी—ठीक कहती हो। पराई निन्दा से थोड़ा सा सुख का विकार हो जाता है। इसका सबब तुम जानती हो?

स्त्री—नहीँ। तुम बता सकते हो ?

स्वामी—हाँ, शायद मैँ बता सकता हूँ ?

स्त्री—अच्छा, कहो।

स्वामी—अपने लोगोँ की प्रशंसा सुनकर मन को बहुत आनन्द मिलता है। ऐसे आनन्द का होना मनुष्य का स्वभाव है—यह अच्छे काम का पुरस्कार है और उसे उत्तेजना देने वाला है। यह प्रशंसा दो तरह से हो सकती है, एक प्रत्यक्ष रीति से, दूसरी परम्परा से। तुमने कोई अच्छा काम किया उस पर तुम्हारा नाम लेकर जो प्रशंसा की जावे उसको प्रत्यक्ष प्रशंसा कहते हैँ। और तुम्हारे परिवार मेँ और सबों की निन्दा की जावे, पर तुमसे कुछ कहा न जाये तो उसे परम्परा की प्रशंसा कहते हैँ। इन दोनो तरह की प्रशंसाओँ मेँ अन्तर बहुत है। दूसरोँ की निन्दा करना हमको अच्छा लगता है, इसका यही कारण है कि ऐसी निन्दा से परम्परा सम्बन्ध मेँ हम अपनी ही प्रशंसा करते हैँ। उसके यह दोष हैँ, ऐसा कहने का यही मतलब है कि मेरे वे दोष नहीँ हैँ। जिसके कुछ दोष रहता है वह बहुधा उसे कहना नहीँ चाहता। जो कहता है कि मेरा यह मतलब नहीँ है उसने आप प्रशंसा पाने की लालसा छोड़ दी है—सबकी निन्दा करना ही उसने अपना काम बना लिया है। दूसरोँ की प्रशंसा सुनते ही बहुत लोगोँ के मन मेँ निन्दा करने की इच्छा होने लगती है; इसका कारण और कुछ नहीँ है,—बस वे अपने को उस निन्दा से अलग करके प्रशंसा पाने की इच्छा करते हैँ। मैँ एक दृष्टान्त से इस बात को समझाता हूँ। जिसने कहा, 'दुलहिन की नाक चपटी है', हो न हो वह आप बड़ी कुरूपा होगी, सब किसीको वह एक ही श्रेणी मेँ रखना

चाहती है; नहीं तो, उसकी अपनी नाक बहुत अच्छी होगी—उसीकी प्रशंसा माँगती है। मैंने किसी शराबी को कहते सुना है, "अमुक शराब पीता है, अमुक शराब पीता है, सब लोग शराब पीते हैं, कौन शराब नहीं पीता है?" इसका मतलब समझीं? सबको शराबी कहने से उसके आप शराबी होने की निन्दा कुछ कम हो जायगी। निन्दा दोनो तरह से की जा सकती है—निन्दित मनुष्य के सचमुच निन्दित काम के लिये, या द्वेष से उस पर झूठी निन्दा करने से। इनमें से एक भी अच्छी बात नहीं है। दूसरी तरह की तो बिलकुल ही बुरी है। उसमें पराई निन्दा और झूठ बात, दोनो दोष आ जाते हैं। पहिली तरह की भी अच्छी नहीं है। पर हाँ, जो उससे उस मनुष्य का कुछ उपकार हो सके, उसके दोष के सुधर जाने की आशा रहे, तो कुछ हानि नहीं। परन्तु बहुधा इस झूठे उपकार का बहाना करके हमलोग दूसरों की निन्दा किया करते हैं। यह बहुत बुरी बात है।

स्त्री—मैंने कई बार देखा है कि जो लोग सुखी हैं, सचमुच जिनकी प्रशंसा होनी चाहिए, उन्हींकी निन्दा हो रही है।

स्वामी—ठीक है। किसीकी बढ़ती देख कर जलन या डाह से भी पराई निन्दा की इच्छा जग जाती है।

स्त्री—किसीकी बढ़ती देख कर जलना बहुत बुरा है। उस दिन तुम हमको गोविन्दलाल और श्यामा का कुछ हाल पढ़ कर सुना रहे थे। उस पुस्तक को अब मैंने भी पढ़ लिया है। उसमें एक जगह पर लिखा है कि जब श्यामा के दिन

खोटे आए, तब मुहल्ले भर की स्त्रियाँ चूँटी काट काट कर श्यामा का दुःख बढ़ाने लगीं। पुस्तक में देखो यों लिखा है—"गाँव भर में सबसे अधिक सुखी श्यामा थी। उसका सुख देख देख कर सब के मन में डाह हुआ करती थी—काली चुड़ैल को इतना सुख! असीम धन—पति ऐसा रूपवान जैसा कि देवियों को भी दुर्लभ हो—निष्कलङ्क यश—मानो हुड़हुड़ के फूल का कमल का सा आदर! तिस पर से उसमें बेला जूही की सुगन्ध! गाँववाली स्त्रियों से इतना नहीं सहा जाता था। इसीलिये सब स्त्रियाँ मिल मिल कर, गट्ठ बाँध बाँध कर, कोई लड़का गोद में लेकर, कोई बहिन को साथ लिवा कर, कोई सिर के केश लपेटती लपेटती, कोई बालों को बिखरा कर ही समाचार देने को आने लगीं—"श्यामा! तेरी तकदीर बिगड़ गई है।" और ठीक ऐसा ही होता भी है।

स्वामी—इसी विषय पर एक स्वामी ने अपनी स्त्री को एक पत्र लिखा था। उसे मैं इस पुस्तक में से पढ़ता हूँ—

"प्रियतमे!—बहुत दिनों से तुम्हारी चिट्ठी नहीं आई है। रामचन्द्र के पत्र से मालूम हुआ कि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। अब कैसी हो, और बीमारी क्या है, सब हाल हमको लिखना। मुझे आशा है कि अब तक तुम अच्छी हो गई होंगी।

"कल एक मित्र से मेरी बड़ी लड़ाई हो गई है। वह कहता था कि हमारे देश की स्त्रियों का मन बहुत ओछा होता है। दूसरे का सुख उनकी आँखों में जहर की तरह गड़ता है। अपने पति अपने को प्यार किया करे—कैकेयी का दशरथ

भी हो जावे—पर दूसरी किसीका पति उससे प्रीति न रखने पावे। दूसरी किसी स्त्री के सुख की बात सुनते ही वह मुँह फुला लेती है। मेरी बेटी को उसका पति खूब चाहा करे, पर लड़का पतोहू से प्रीति न रक्खे। क्या यह बात सच है ?

"मैं तुम लोगों को इतना बुरा नहीं समझता हूँ। इसलिये मित्र की बात को मैं एकाएकी नहीं मान सका। मैंने कहा, 'स्त्रियाँ पराया सुख देख कर चाहे दुःख माना करें, पर बेटा पतोहू ये तो पराए नहीं हैं। पतोहू बेटे की प्यारी होगी, इससे सास को दुःख क्यों हो सकता है ? ऐसा ही है तो दामाद का बेटी को प्यार करना उसे क्यों नहीं खलता ?' मित्र ने कहा, 'तुम नहीं जानते हो—सब अपनी अपनी जाति ही के सुख पर दृष्टि रखते हैं। पुरुष दूसरे पुरुष के सुख से दुःख मानता है; स्त्री स्त्री का सुख नहीं देख सकती। बेटी अपनी बेटी है, पतोहू पराई बेटी है। पतोहू का सुख अच्छा न लगे तो अचरज की बात नहीं है'। मैं इस बात का भी सच न मान सका। मैंने कहा, 'बेटी के सुख से दामाद को सुख होता है, और पतोहू के सुख से बेटे को। बेटा अपना बेटा है, दामाद पराया बेटा है, तब तो उस दामाद ही के सुख से जलन होनी चाहिए'। इस पर मित्र ने एक बात कह कर मेरा मुँह बन्द कर दिया। उसने कहा—'जिनका स्वभाव ही पराए सुख से दुःखी होने का है—पतोहू का सुख उनको अच्छा नहीं लगता, पतोहू के सुख से बेटे को सुख होगा, इस बात को वे भूल जाती हैं'। मैं क्या करूँ—मैं चुप हो गया।

"गंगादेवी ने अपने जीवन के उद्देश्य को समझ लिया है, इस लिये वह सुख से रहती है; तुमने नहीं समझा है तो क्या उसका सुख देख कर तुम्हारा जी दुखता है? तुम भी उसकी सी सुखी होना चाहो, यह न्यारी बात है। पर तुम उसका दुःख देख कर सुखी होना चाहो तो तुम्हारी भूल है। संसार में दूसरे के दुःख से किसीको सुख नहीं मिल सकता। परन्तु शत्रु को दुःखी देख कर हम लोग जो सुख पाते हैं वह सुख नहीं है, उसका नाम है पहले पाए हुए दुःख से छुटकारा। और इसका असली कारण दूसरे का दुःख नहीं है, उस दुःख के साथ साथ हमारे द्वेष का हट जाना है। पहले जब उसकी दशा अच्छी थी, तब उसके सुख से तुमको दुःख मिला था। अब उसके वे दिन नहीं रहे—अब उसके दिन बुरे आए हैं, इसीसे तुम्हारा द्वेष भी घट गया है, और द्वेष का फल दुःख भी घट गया है। पर सोच कर देखो, इससे तुमको नया सुख कुछ नहीं मिला—तुमने अपनी पहली दशा ही को फिर पाया है। इस बात से तुमहीको अधिक दुःख भोगना पड़ा है। सो देखो, पराए सुख पर डाह करने से तुमको सुख नहीं मिल सकता है, झूठ मूठ दुःख ही का बोझ ढोना पड़ता है। कहो तो ऐसे दुःख से क्या प्रयोजन है?

"इतना ही इस पत्र में लिख कर मेरा मन नहीं भरता। यह विषय बहुत सीधा नहीं है। पर तुम कभी किसीकी भलाई देख कर मन में दुःखी मत होना, दूसरे के सुख से आप भी सुखी होना। सुख ही को अपने अधिकार में रक्खा करो। पत्र का उत्तर जल्दी लिखना।"

पराई भलाई से दुःख मानना और पराई निन्दा करना मनुष्य को इतने प्यारे क्यों लगते हैं तुमने समझा? अब इनसे हानि क्या क्या होती है सुनोगी?

स्त्री--यह बात भी तुम्हारे उपदेश में आ गई। और कहने की जरूरत नहीं है। और हमने इसका फल देख सुन कर भी बहुत कुछ जान लिया है। पराई निन्दा करते करते राई से पर्वत हो जाता है, और डाह का फल भी बहुत कड़ुआ होता है सो मैं अच्छी तरह जानती हूँ।

स्वामी—अच्छा, आज यहीं तक रहने दो।

विविध

स्वामी—तुम क्या पढ़ रहीं थीं ?

स्त्री—"नारी-नीति"।

स्वामी—बहुत अच्छी पुस्तक है, पढ़ो। तुम जैसी शिक्षा पाई हुई स्त्रियों के लिये कोई दूसरी पुस्तक इसके बराबर नहीं है। परन्तु यह सब उपदेश की पुस्तकें हैं। ऐसी पुस्तकों में आकर्षणी शक्ति नहीं है - पढ़ने को बहुधा जी नहीं चाहता। ऐसी कोई पुस्तक होती जिसे पढ़ने में जी भी लगे और उसमें उपदेश भी रहें तो उनसे बड़ा काम निकल सकता है।

स्त्री—हाँ, सूखे साखे नीरस उपदेश अच्छे नहीं लगते। समझ में तो आता है कि इन के पढ़ने में जी लगाना चाहिए, पर ऐसी समझ से होता ही क्या है? मैं तो समझती हूँ कि उन एक एक उपदेशों पर एक एक कहानी या उपन्यास बन जाते तो स्त्रियाँ अधिक पढ़तीं। बंगला में सुना है ऐसे कई उपन्यास हैं, और छोटी छोटी कहानियाँ भी लिखी जाती हैं, पर हिन्दी में दो एक को छोड़ ऐसी पुस्तकें हैं ही नहीं।

स्वामी—कहती तो तुम ठीक हो। एक एक नीति पर एक एक उपन्यास रचा जाता तो देश का बड़ा उपकार होता। ऐसा होवे तो उस एक नीति के साथ साथ और भी बहुत सी नीतियाँ बतलाई जा सकती हैं। ऐसी पुस्तकों से आनन्द और नीति दोनो मिल सकते हैं।

स्त्री—तुम्हारी राय में हम सबों को कैसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए ?

स्वामी—मैं इस बात को नहीं बताना चाहता। क्या भला बुरा तुम आप नहीं पहचान सकतीं?

स्त्री—कुछ कुछ तो पहचान सकती हूँ। तब भी तुम्हारी मत भी सुन लेना चाहती हूँ।

स्वामी—इस विषय पर मैं किसीकी सम्मति लेना नहीं चाहता। जो पुस्तक तुम्हारे पढ़ने लायक है, वह दूसरे के लायक नहीं भी हो सकती है। मनुष्य की रुचि, बुद्धि और विद्या आदि पर ध्यान रख कर पुस्तक चुनी जा सकती हैं।

स्त्री—तब भी?

स्वामी—जिन पुस्तकों के पढ़ने से ज्ञान, दया, स्वदेश से प्रीति, आदि अच्छे गुण पुष्ट हो सकें, जिनको पढ़ कर निर्मल आनन्द मिल सके, और अच्छे कामों के करने में उत्साह और बुरों के करने से घृणा पैदा हो, ऐसी ही पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ। मोटी तौर पर इतना ही जान रखना बस होगा।

स्त्री—क्या स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी पुस्तकें नहीं पढ़नी चाहिएँ?

स्वामी—जरूर चाहिएँ। इसीसे तो मैंने किसी विशेष प्रकार के नाम नहीं बतलाए हैं। एक बात याद रखना; जिसने अपने कर्त्तव्यों को अच्छी तरह से जान लिया है, और जो उनके करने की योग्यता रखता है उसीको सुशिक्षित कहना चाहिए। कर्त्तव्य तीन प्रकार के होते हैं—शरीर के प्रति, मन के प्रति और आत्मा के प्रति। शरीर के प्रति कर्त्तव्य करने के लिये स्वास्थ्य की रक्षा करके शरीर को बलवान और काम के लायक बना रखना चाहिए। दया, ममता, स्नेह, दुःख सुख में

समता या समवेदना आदि गुणोँ को उचित रीति से पुष्ट करना मन के प्रति कर्त्तव्य है। और ईश्वर के चरणो मेँ प्रीति रखना आत्मा के प्रति कर्त्तव्य का पालन कहलाता है। इन कर्त्तव्योँ को सिखलानेवाली, वा निर्मल पवित्र आनन्द देनेवाली पुस्तकोँ का पढ़ना अच्छा है।

स्त्री—क्या स्वास्थ्य की रक्षा न करने से कर्त्तव्य की हानि हो सकती है?

स्वामी—होती है। तुम लाख पुण्य करो, हृदय मेँ लाख दया ममता रक्खा करो, स्वास्थ-रक्षा के नियमोँ को न मानोगी तो रोगी हो जाओगी। जब ईश्वर का बनाया हुआ यही नियम है तब इस बारे मेँ पूछना ही कैसा! शरीर ही अच्छा न रहेगा तो हृदय और मन भला किस तरह से अच्छे रह सकेँगे?

स्त्री—तब तो मुझको स्वास्थ्य-रक्षा की अच्छी अच्छी दो चार पुस्तकेँ ला देना।

स्वामी—हिन्दी भाषा मेँ अभी इस विषय पर तुम लोगोँ के समझने योग्य पुस्तकेँ ठीक बनी नहीँ हैँ। पर तुम चाहती हो तो मैँ संस्कृत, अंग्रेज़ी, बंगला आदि भाषाओँ मेँ प्रकाशित पुस्तकोँ को पढ़ पढ़ कर तुमको समझा दूँगा। "भावप्रकाश" का अनुवाद पढ़ो तो तुम्हारा काम चल जायगा।

स्त्री—अच्छा तुम पढ़ पढ़ के ही हमको स्वास्थ्य-रक्षा की बातेँ समझा देना।

स्वामी—तुम लोगोँ के सीखने की और भी कई बातेँ हैँ—जैसे शिल्प-विद्या और रसोई।

स्त्री—और धात्री-विद्या?

स्वामी—यह तो स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तकों में आजायगी।

स्त्री अच्छा, इन सब विषयों के सीखने की सहज रीति क्या है?

स्वामी—जो स्त्रियाँ इन विषयों को अच्छी तरह जानती हैं उनसे पूछ कर सीख लेना चाहिए। रसोई और सीना पिरोना अकेली पुस्तकों के देखने से नहीं आते। इनको करते करते कुछ ज्ञान होने लगे तब पुस्तकों के पढ़ने से वह ज्ञान पुष्ट हो जाता है। सीखने की इच्छा रहे और काम करने से कोई जी न चुराया करे तो सब कठिनाइयाँ आप ही आप दूर हो जाती हैं। पर एक बात मैं यहाँ पर कहूँगा। पहले पहल बहुत भारी काम की बातों को न सीख कर नित्य के काम की बातों को सीखना उचित है। आगे दाल, रोटी, साग, भाजी का बनाना अच्छी तरह से न सीख कर, पकवान, मिठाई, आदि के सीखने का यत्न करना ठीक नहीं है। और टोपी, कुरते, रजाई, दुपट्टे आदि का सीना बिना सीखे पहले ही से गुलूबन्द मोज़ों का बिनना या ऊन रेशम के फूल काढ़ना भी ठीक नहीं है। नित्य के काम की बातों पर पहले ध्यान देना चाहिए।

स्त्री—अच्छी बात याद दिलाई है; देखो तो यह गुलाब कैसा बना है?

स्वामी—वाह, यह तो बहुत अच्छा बना है। इसका सिरजनहार कौन है?

स्त्री—पहले ही से हँसने लगे; तब और मैं क्या कहूँ?

स्वामी—नहीं, नहीं, सच बताओ। यह किसका काम है? बहुत ही सुन्दर बना है। इसके बनाने में जो चतुराई दिखाई

गई है उसकी प्रशंसा मैं नहीं करता हूँ। फूल में कुछ कविता का सा भाव भरा हुआ है। मानो बड़े तड़के सूर्य निकलने के पहले ही कोई उसे तोड़ लाया है। प्रेमियों के पहले पहल प्रेम-सम्भाषण की नाईं फूल का मुखड़ा खिल कर भी नहीं खिला है। भीतर इसके मानो कितनी गहरी बातें, कितने अरमान भरे हैं, पर मुख से वे कहे नहीं जाते। दो एक पंखड़ियों पर मानो ओस की बूँदें गोल गोल मोतियों की तरह शोभा पा रही हैं। और यह देखो, कहीं पर, एक बूँद ओस की टपक कर कुछ नीचे को बहने सा लगा है, कुछ पंखड़ी ही में लगा हुआ है। प्रभात समय के मृदु मन्द बयार से मानो इस पत्त का अगला भाग तनिक काँप सा रहा है। बताओ तो किस फूल ने इस फूल की रचना की है?

स्त्री—(कुछ लज्जा के साथ) आज मैंने ही इसको काढ़ा है। अच्छा, तुमने तो इसका इतना बखान कर डाला, पर मैंने तो इतनी बातें सोच कर नहीं बनाई थी। जो आप सुन्दर होता है वह सभी बातों को सुन्दर ही देखा करता है; है न?

स्वामी—जो सुन्दर है उसके सब काम आप से आप सुन्दर हुआ करते हैं।

स्त्री—चलो, तुमसे भला कोई बोल कर जीत सके है? कहो तो, क्या ऐसा काम सीखना अच्छा नहीं है?

स्वामी—अच्छा नहीं है, ऐसा तो मैं नहीं कहता हूँ। पर मेरी समझ में जो बातें नित्य के काम की हैं उनका ही पहले सीखना चाहिए।

स्त्री—मैं समझ गई। चित्र-विद्या के लिये तुम क्या कहते हो?

स्वामी—प्रयोजन की बातों का अच्छा अभ्यास हो जाने के पीछे और चाहे जो कुछ सीख लो, कुछ हानि नहीं। रसोई सीखने में तुम्हारी क्या राय है?

स्त्री—मेरी राय में सब स्त्रियों को रसोई बनाना सीखना चाहिए। राजा की रानी को भी रसोई बनाना सीखना उचित है।* पति पुत्रों को अपने हाथों से रसोई बना कर खिलाने में जितना सुख मिलता है इतना सुख मिसरानी जी की रसोई से नहीं मिल सकता। पति भोजन कर रहे हैं, स्त्री एक के पीछे दूसरा, दूसरे के पीछे तीसरा व्यञ्जन परोस रही है, स्वामी पूछते हैं "किसने बनाया है?" कहने का साहस नहीं होता, स्त्री डर डर कर पूछती है "कैसा बना है?" पति कहते हैं "बहुत अच्छा तो बना है"। बस इतनी ही बात से स्त्री को मानो स्वर्ग का सुख मिलने लगता है। उस समय मन में कितना आनन्द मिलता है सो कहा नहीं जाता। स्वामी के कहते न कहते वह फिर उसी व्यञ्जन को परोसती है, पति

* आज कल की बहुत सी स्त्रियाँ रसोई बनाने का नाम ही सुन कर घृणा से अपना मुंह फुला लेती हैं। रसोई बनाने में धुँआ लगता है, शरीर को पीड़ा होती है, कपड़े मैले हो जाते हैं, हाथों में दाग लग जाते हैं, कोमल हाथ कड़े हो जाते हैं, गुलाब का सा रंग गरमी पाकर बिगड़ जाता है, भला इतना दुःख कैसे सहा जावे! और नौकर चाकरों के रहते घर की मलकिन या बहू बेटियों को इतना दुःख पाने से क्या काम? परन्तु जिस देश में भगवती अन्नपूर्णा की पूजा की विधि है, जिस देश में द्रौपदी, राजा नल आदि की रसोई की बड़ाई पुराण शास्त्रों में वर्णित है, उसी देश की स्त्रियाँ आज अंग्रेजी मेम साहबों की नकल उतार कर यदि रन्धन से इतनी घृणा करने लगें तो हम अपना दुःख किससे कहें?

तनिक मुसक्या देते हैं, इस आनन्द से स्त्री फूली नहीं समाती। कहो तो स्त्री के लिये यह कैसे सुख की बात है! इससे बढ़ कर सुख और क्या हो सकता है? स्वामी के मुखमंडल पर आनन्द के चिन्ह स्त्री को कितना सन्तोष दिलाते हैं उसका बर्णन मैं नहीं कर सकती। तुम्हारा चेहरा जब सूखा हुआ देखती हूँ तो सारे संसार में अंधेरा छा जाता है। जी चाहता है कि जैसे बने तुम्हारा दुःख दूर कर दूँ। हमको चाहे जितना दुःख हो पर पति को हँसी खुशी देख लेवें तो हमारा दुःख दूर हो जाता है।

स्वामी—देखो।

स्त्री—क्या?

स्वामी—तुम्हारी सी स्त्री सब के भाग में होती तो—

स्त्री—तो सभी को तुम्हारी तरह दुःख भोगना पड़ता।

स्वामी—क्या कहा, हमारी तरह दुःख भोगना पड़ता! इसका नाम दुःख होवे तो मैं अपने परम मित्र को आशीर्वाद दूँगा कि तुम जन्म भर दुःख पाओ। क्या यह—

स्त्री—बस, रहने दो। बताओ तो इन सब बातों को मैं किस तरह से सीख लूँ।

स्वामी—मेरी बात को टाल दिया! अच्छा उसे जाने दो। यह सब बातें पुस्तकों के पढ़ने से ठीक नहीं आतीं। पुस्तकों से एक साधारण ज्ञान मिल सकता है, फिर परिश्रम और सावधानी से रसोई बनाते बनाते अच्छा बनाने का अन्दाज़ा मिल जाता है। रसोई की विद्या अभ्यास से आती है।

स्त्री—अभ्यास करने से आ जावे तो मैं इसे जरूर सीखूँगी। तुम लोग हमारे पालन पोषण के लिये, हमारी

लज्जा और सम्मान की रक्षा के लिये हजारों दुःख झेल कर प्राण दे रहे हो, और हम सब तुम्हारे शरीरों की रक्षा के लिये घर में बैठी बैठी इस विद्या को नहीं सीख सकतीं? और परिश्रम और अभ्यास के विना तो कोई भी विद्या नहीं आती।

एक बड़ी भारी बात को तो तुमने आज तक नहीं बताया।

स्वामी—कौन सी?

स्त्री—सन्तान-पालन।

स्वामी—जब उसके दिन आवेंगे तब वह भी तुमको मालूम हो जावेगा।

स्त्री—(कुछ भौं चढ़ा कर) जब दिन आवेंगे? मेरे भाई के बाल बच्चे हैं, क्या मुझे उनको पालना नहीं पड़ता?

स्वामी—ठीक कह रही हो। सन्तान का भावी जीवन बहुत करके बचपन की शिक्षा ही पर निर्भर करता है। और सन्तान अपनी माता को जितना मानती है, जितनी उसकी शिक्षा के अधीन होती है, इतनी दूसरे किसीके नहीं होती। इसलिये इस विषय का सीखना प्रत्येक स्त्री—प्रत्येक माता—को चाहिए।

स्त्री—यह कैसे सीखा जाता है?

स्वामी—आप ज्ञान पाकर। इसके कोई नियम नहीं बताए जा सकते। एक साधारण सूत्र को याद रख कर, समझ बूझ कर बुद्धिमानी से काम करने ही से यह सहज में आ जाता है।

स्त्री—वह सूत्र कौन सा है?

स्वामी—बच्चे जिसमें शरीर और मन दोनों की उन्नति करने में लग जावें, माता को इसका यत्न करना चाहिए। बच्चे माता के स्वभाव का जैसा अनुकरण करते हैं, ऐसा दूसरे किसी का नहीं करते। इससे माता को बड़ी सावधानी से अपने बच्चों के सामने अपने चरित्र में से दोषों के अंशों को छिपाना और गुण-भाग को अच्छी तरह से दिखाना चाहिए।

स्त्री—अच्छा, लड़कों को मारना चाहिए या नहीं?

स्वामी—कभी कभी मारना धमकाना भी पड़ता है। बहुत लाड़ प्यार से बालक दो कौड़ी के हो जाते हैं। उनसे कुछ कहा न जावे तो मनमाना काम करते करते वे अभिमानी, क्रोधी और कठोर स्वभाव के बन जाते हैं। बहुत सी स्त्रियाँ कहा करती हैं, अभी तो यह निरा बच्चा है, बड़ा होवेगा तो आप सुधर जावेगा। पर वे भूल जाती हैं कि जब तक बाँस कच्चा रहता है तभी तक उसे झुका सकते हैं, पक जाने पर वह फिर नहीं झुकाया जा सकता है।

स्त्री—अच्छा, तुम कैसे लड़कों को अच्छा समझते हो—चंचल ऊधमी लड़कों को या सीधे सादे शान्त स्वभाव वालों को? जो रात दिन मारपीट करता फिरता है, उसे या जो चुप चाप बैठा रहता है, किसीसे कुछ नहीं बोलता, उसे?

स्वामी—यह तो तुमने बड़ा कठिन प्रश्न किया। इसका क्या जवाब दूँ मैं नहीं जानता। कौन बालक आगे चलकर किस ढंग का होगा, यह कोई पहले से नहीं बतला सकता।

स्त्री—इस बारे में तब क्या करना चाहिए? बालक चंचल होवे तो क्या जबरदस्ती उसे शान्त बनाना ठीक होगा?

स्वामी—तुम्हारा प्रश्न सुन कर मुझे एक जरूरी बात याद पड़ गई। बात यह है—बचपन में बालक के मन की वृत्ति को स्वाधीन तरह से बढ़ने देना चाहिए। इस विषय में हमारे देश के माता पिता बड़ी ढिलाई करते हैं। बुरा काम करने से धमकाना जरूर चाहिए, पर दूसरी सब बातों में बच्चों को स्वाधीनता से काम करने देना चाहिए। बचपन ही से जिसे सब बातों में दूसरे का मुँह ताकना पड़ता है, बड़ा होने पर उसका मनुष्यत्व कभी पूर्णता को नहीं पा सकता है। बच्चा कोई अपराध करे तो शासन करनेवाले को चाहिए कि वह पहले बच्चे को उसके काम की बुराई अच्छी तरह से समझा देवे। उस बुरे काम का फल क्या होगा, यह न समझाया जावे तो उस काम में बच्चे की चाह पहले ही की तरह बनी रहती है, और वह डर के मारे दिखा कर न सही तो उसे छिप कर फिर भी करेगा। इसलिये इस रीति का शासन बहुत बुरा है। बच्चे को नासमझ जान कर उससे सब बातें अच्छी तरह से न कहना बड़ी भारी भूल का काम है। अच्छी बात को समझा देने से बच्चे जितना समझ लेते हैं, बड़े आदमी उतना नहीं समझते। जो अच्छी तरह से खोटे काम की बुराई समझाई जावे तो बच्चे के मन में जो संस्कार या विश्वास जम जावेगा, वह फिर कभी कुतर्क या लालच की आँधी चलने पर भी नहीं हिल सकेगा। बहुत लोग ऐसा संस्कार जमा देना उचित नहीं समझते। ये उनका बड़ा भारी भ्रम है। मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि बुरे काम पर जब तक संस्कार से घृणा नहीं होती तब तक शिक्षा के बल से उस घृणा का पैदा करना बहुत कठिन हो जाता है। सबसे पहले विश्वास न हो तो

ज्ञान भी नहीं हो सकता। पहले पहल कई एक सत्य बातों को सत्य मान लेना, उनकी सत्यता पर विश्वास कर लेना पड़ेगा, नहीं तो काम नहीं चलेगा। यह विश्वास, यह संस्कार जैसा आवश्यक है, अच्छा होने से उतना ही उपकारी भी होता है। मान लो, "झूठ बोलना बुरा है"। बालक बड़ा होकर आपही ज्ञान के बल से इस बात को समझ लेगा, इस विचार से यदि बालक के मन में यह बात बचपन ही में न जमा दी जावे तो उसका फल कैसा भयंकर हो जायगा! हो न हो इस ज्ञान को वह जन्म भर नहीं पा सकेगा; और जो पा भी जावे तो इसके पहले उस सत्य की अज्ञानता के कारण वह ऐसे नीच काम करने लगेगा कि जन्म भर उनकी सुधार नहीं हो सकेगी। इसीलिये मैं कहता हूँ कि बचपन में बच्चों के मन में अच्छे अच्छे संस्कारों का जमा देना माता पिता का बड़ा भारी कर्त्तव्य है। और अधिक क्या कहूँ। असल बात यह है, जिससे बच्चे धर्मात्मा, काम में चतुर, परिश्रमी, साहसी, दुःख झेलने में सहनशील, विनयी, समझदार और मन खोल कर बोलने वाले बन सकें, माता पिता बाल्य-काल ही से उनको ऐसी शिक्षा दिया करें।

सास-बहू

स्वामी—हुआ क्या था ?

स्त्री—ललिता को बिदा कराने के लिये उसके ससुराल से कोई आया है। उसकी मा जाने की तैयारियाँ कर रही थी—संग में कौन कौन सी चीज भेजी जायगी, वही उठा धर रही थी, इतने में दुलहिन वहाँ पर आ पहुँची। ऐसी सूरत बना के आई कि देखते ही कलेजा काँप उठा। बाल बिखरे हुए, सिर खुला हुआ, देह पर से कपड़ा हटा जाता है। दोनो आँखें लाल लाल, भौंहें चढ़ी हुई! वहाँ पर जो जो स्त्रियाँ बैठी थीं सभी उसे देख कर डर गईं। मैं तो हट कर एक किनारे खड़ी हो गईं। चुड़ैल ने आते ही कहा, "यह जितनी वार ससुराल जायगी इसी तरह से घर की चीज निकाल दोगी तो क्रोड़पति का घर भी नास हो जायगा। घर में अब कुछ बचने नहीं पावेगा। बेटी ही में इनके प्राण पड़े रहते हैं, और बेटा मानो कोई है ही नहीं। बेटी को देते देते जी नहीं भरता जब देखो तब उसीका पेट भरा करती हैं, रात दिन कहा करती हैं कि गरीब के घर जा पड़ी है, हम न देंगी तो उसका काम कैसे चलेगा ? अरी, बेटी गरीब के घर पड़ी काहे को ? अच्छा घर देख कर ब्याह क्यों नहीं किया था ? गरीब है तो क्या हमारा गला काटा जायगा ?"—ऐसी बातें चिल्ला चिल्ला कर कह रही थी कि मैं क्या कहूँ! हम सब तो उसकी बातें सुन कर सन्न रह गईं। ललिता की अम्मा रोने लगी। पर ललिता भी कुछ कम नहीं है। वह बोल उठी, "क्यों भाभी! क्या यह तेरे

बाप का धन है जो देते हुए तेरी छाती फट रही है ? आई है एक कंगाल के घर से, पहले कभी ऐसी चीज़ें देखी भी थीं ? अब आई है अपना हक़ जमाने को ! क्यों न हो ? जैसा बाप है बेटी भी तो वैसी ही न होगी !" बस इतना कहना था कि फिर देखो तमाशा, दुलहिन आग बगूला बन कर कूदने लगी, जो मुँह से निकला बक डाला, मैं तो वे बातें अपने मुँह से कह भी नहीं सकती।

स्वामी—अब तो लड़ाई बन्द हो गई है न ?

स्त्री—हाँ लड़ाई बन्द हो गई है। जैसे आँधी के पीछे सन्नाटा पड़ जाता है उसी तरह से लड़ाई के पीछे तीनों जनी चुप हैं। ललिता की अम्मा गुस्सा कर के जा कर पड़ रही। बड़ी बूढ़ियाँ उसे समझाने लगीं। दुलहिन ने अपने लड़के की पीठ पर ज़ोर ज़ोर से दो चार मुक्के जमा दिए। और ललिता बाप के घर से यह कहती हुई चली गई कि मैं अब कभी फिर यहाँ न आऊँगी।

स्वामी—अच्छी बात है !

स्त्री—अच्छा, तुम बताओ तो सही, इसमें दोष किसका है ?

स्वामी—किसीका नहीं, दोष मेरा है ?

स्त्री—नहीं, सच कहो, किसका दोष है ?

स्वामी—दोनों का।

स्त्री—दोनों का नहीं, मुहल्ले भर का ! दोष तो बहू का है। सास का क्या दोष है ?

स्वामी—आओ, इसी बात पर हम तुम भी लड़ने लगें।

स्त्री—हर्ज क्या है ? इतने लोग लड़ना जानते हैं तो हमने तुमने क्या बिगाड़ा है ? तुम इन दोनो में से एक का पक्ष ले लो, मैं दूसरी का। देखें किसकी जीत होती है, किसकी हार होती है।

स्वामी—लड़ने को तुम्हारा जी इतना चाहता हो तो मायके को क्यों नहीं चली जातीं ?

स्त्री—क्यों, वहाँ क्या धरा है ?

स्वामी—वहाँ भौजाई से खूब लड़ा करना।

स्त्री—हाँ हाँ, मेरे मायके जाने से तुमको बहुत सुख मिलता है न ?

स्वामी—चीज़ वस्तु वहाँ से लाओगी तो मुझे सुख क्यों न मिलेगा। जाने भी दो, लड़ने को जी चाहे, तुम लड़ा करो। मैं अब देखूंगा, वकालत करना तुम कैसा जानती हो ! तुम किसकी तरफ हो ?

स्त्री—सास की।

स्वामी—क्यों, तुम आप बहू हो कर सास का पक्ष क्यों लेती हो ?

स्त्री—मैं बहू हूँ इसी लिये मैंने सास का पक्ष लिया है। आगे सास है या आगे मैं हूँ।

स्वामी—सच कहना। क्या करूँ, तब मुझही को बहू का पक्ष लेना पड़ा। चलने दो पर तकरार (तर्क) करना जरूरी जान कर सत्य का अपमान मत करना।

स्त्री—कैसे पागलों की सी बातें कर रहे हो ? कहीं ऐसा भी होता है ?

स्वामी—अच्छा, तब सास के बरखिलाफ मेरी नालिश सुन लो। सास के सामने बहू मानो दासी के सिवाय और कुछ है ही नहीं। उनकी आज्ञा मानना और घर का धंधा करना बस इन्हीं दो कामों के लिये बहू बुलाई गई है। दासी को तो कुछ थोड़ी सी स्वाधीनता भी रहती है, पर पतोहू के भाग में इतना भी नहीं बदा रहता। पहले ऐसा बर्त्ताव किए जाने पर जब बहू का मुँह खुल जाता है तब वह सास की परवा क्यों करेगी।

स्त्री—आज मैं तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुन रही हूँ। क्यों, तुमही ने तो मुझको सिखाया है कि सास की सेवा करना बहू का मुख्य धर्म है। माता पिता की सेवा करना, उनको सुख से रखना, पुत्रों का एक बड़ा कर्त्तव्य है। पर लड़के दूसरे बहुतेरे कामों में फँसे रहते हैं इसलिये उनसे माता पिता की सेवा पूरी तरह से नहीं बनती। बहुएँ सास ससुर की जो सेवा करती हैं उससे स्वामी के कर्त्तव्य में सहायता करती हैं. वे ऐसा क्यों नहीं समझतीं? वे ऐसा समझें तो उनको किसी काम में इतना दुःख न मालूम हो। और घर का धंधा—सो तो जैसे ससुर का काम है, वैसे ही स्वामी का भी काम है। यह तो बहुओं का अपना ही काम है, उसके करने में दुःख किस बात का हो सकता है? मेरी समझ में तो बहुएँ इसको अपना काम समझ लिया करें तो उनको कुछ भी दुःख न जान पड़ेगा। मैं जो इतना करती हूँ—अपने मुँह मैं अपनी बड़ाई नहीं करती—मुझे तो तनिक भी बुरा नहीं लगता! इसी तरह सब बहुएँ क्यों न समझें।

स्वामी—मान लिया, सास की सेवा करना असल में स्वामी ही का काम करना है। सास ससुर—स्वामी के मा बाप—ये लोग सब तरह से बहुओं के पूज्य हैं, यह बात तुम सच कह रही हो। पर जो सास पतोहू को प्यार न करे, उसे पराई बेटी समझने लगे, और इस पर पतोहू कुछ चंचलता दिखाने लगे तो दोष किसका है?

स्त्री—आज तुमको हो क्या गया है? यह तुम कैसी बात कह रहे हो? जिसका जो कर्त्तव्य है, वह उसे पूरा करे। सास अपना कर्त्तव्य भूल जावे तो क्या बहू को भी अपना कर्त्तव्य भूल जाना चाहिए? और ऐसी सास होती ही कहाँ हैं? बेटा जिसे प्यार करता है, जो बेटे के आदर की वस्तु है, क्या कहीं वह बेटे की माता से अनादर पा सकती है? और जो वैसी सास सचमुच कहीं होवे भी तो मैं कहूँगी कि वह अच्छी नहीं है। जैसे सास की सेवा करना पतोहू का कर्त्तव्य है, वैसे ही पतोहू को बेटी की तरह प्यार करना सास का भी कर्त्तव्य है। एक ओर पतोहू समझे कि सास की सेवा से वह अपने पति का कर्त्तव्य पूरा कर रही है, दूसरी ओर सास समझे कि पतोहू पराई बेटी होकर भी मेरी सेवा करती है यह उसका गुण है।

स्वामी—ठीक बात है। पतोहू चाहे जो कुछ करे, सास को उसीसे सन्तोष करना चाहिए; और पतोहू का सास जितना भी आदर करे, उसीको वह बहुत मान लिया करे, क्योंकि वह सास की सेवा करती है वह सास के लिये नहीं अपने स्वामी के लिये करती है। इस बार मैं थोड़ी सी हार

माने लेता हूँ। सास बहू को चाहे दासी ही क्यों न समझे, इससे बहू का कुछ नहीं बिगड़ता। वह अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिये दासी ही बन जावे तो क्या हानि है। और सास अपना कर्त्तव्य भूल कर बहू को चार बातें सुना भी देवे तो बहू को उसे सह लेना ही चाहिए। दूसरे ने अपना कर्त्तव्य नहीं किया यह देख कर मैं भी अपना कर्त्तव्य न करूँ, यह कोई अच्छी बात नहीं है।

स्त्री—अच्छा, तो लो, मैं भी हार माने लेती हूँ। बहुत सी सासें बहुओं को दासी ही की तरह सचमुच मानती हैं; यह बात बहुत बुरी है। बेटों पर उनका जितना दबाव हो सकता है, बहुओं पर उतना नहीं हो सकता। पराई बेटी अपने लोगों से बिछुड़ कर सास के पास आई है, इतनी बात की सुध रख के सास भी उस पर दया नेह का वर्त्ताव रक्खा करे, उसे अपनी बेटी की तरह माना करे। बहू को उससे सँभलने योग्य काम में लगावे, आप भी भरसक सब कामों से छुट्टी लेकर बैठी न रहे। एक दम से इतना भारी बोझा छोटी छोटी बहुओं पर लाद देना अच्छा नहीं होता। बहू काम करते करते थक जावे और कोई बात कह डाले तो सास को चाहिए कि उसे हँस कर टाल दिया करे। बहू अपनी बेटी के ही बराबर है। बेटी अपनी मा पर गुस्सा करती है तब मा क्या करती है? सास को भी वैसा ही करना चाहिए।

स्वामी—अच्छा, मेरी एक बात और सुन लो। सासें छोटी छोटी बहुओं के ऊपर सारा काम काज सौंप कर

निश्चिन्त हो जाती हैं। भला उनकी उम्र काम करने की है? और जो वे बेचारी काम न करें तब भी आफत हो जाती है। उनको कितनी बातें सुननी पड़ती हैं।

स्त्री—यह भी तुम्हारे समझने की भूल है। बाँस कच्चे ही में झुक सकता है, पक जाने पर चरचराने लगता है। थोड़ी उम्र में सिखाई न जावेंगी तो क्या फिर बुढ़िया होकर वे कुछ सीख सकेंगी? जो माताएँ अपनी बेटियों को छोटेपन ही से सब सिखा दिया करें तो उनको ससुराल जाकर बहुत कठिनाई भुगतनी नहीं पड़ेगी। पर हाँ, जो कोई काम बहू के किए न हो सके तो उसे धमकाना नहीं चाहिए। अच्छी तरह से सिखा देना चाहिए।

स्वामी—इसके लिये बहुतेरी सासें बहू की माँ को भी गाली दिया करती हैं। क्या उससे बहू का जी नहीं दुखता?

स्त्री—उस जी दुःखने के लिये अपराधी कौन है? बहू की माँ या सास? पर हाँ, जब उस तरह की गाली गलौज से कुछ फायदा नहीं होता तो सास को चुप रहना ही चाहिए। यह बात भी तै हो गई। अब और क्या कहना है कह डालो।

स्वामी—ऐसी बहुत सी सास हैं जो बहू के मायके जाने की बात सुनते ही नाराज हो जाती हैं। बताओ तो सही, क्या यह बात अच्छी है?

स्त्री—यह बात अच्छी नहीं है सो मैं भी मानती हूँ। पर बहुओं को मायके जाकर बहुत दिनों तक नहीं रहना चाहिए। सास को भी चाहिए, कभी कभी बहुओं को माता पिता के

दर्शन करने की छुट्टी राजी खुशी से दे दिया करें। जैसे अपनी बेटी को देखने के लिये उनका जी चाहा करता है, उसी तरह से बहू की मा का भी जी तरसा करता है। इतना समझ लेना ही बहुत है।

स्वामी—अच्छी बात तुमने याद दिलाई है। बेटी और बहू के कामों में सास इतनी तरफदारी करती हैं कि देख कर आश्चर्य होता है। बेटी जो कुछ करे वह सब अच्छा है, और बहू जो कुछ करती है वही बुरा है। बेटी और बहू में अनबन हो जावे तो सास बेटी का ही पक्ष करने लगती है। बेटी भी इस ढंग से दुलार पा पा कर बहुत खोटी हो जाती है। तुम्हीने तो देखा है, क्या ललिता का इतना ऊधम मचाना भला अच्छा लगता है ?

स्त्री—ललिता की बात पूँछते हो तो बताओ इसमें दोष किसका है ? ललिता का, या दुलहिन का ? तेरे पास बहुत कुछ है, उसके पास कुछ भी नहीं है। जो उसने तेरी एक चीज़ ले ही ली तो भला उसे इतनी बातें कहनी कहीं अच्छी है ? और तू कहने वाली कौन है ? तेरा इसमें क्या है ?

स्वामी—वाह ! वाह ! स्वामी का कर्त्तव्य है सो स्त्री का भी कर्त्तव्य है, और स्वामी का धन उसकी बहिन का भी धन हो गया ! ऐसा तो कहोगी ही, तुम्हारे भी तो भाई हैं न ?

स्त्री—अच्छा यों ही सही, धन भी मान लो बहू ही का है, तब भी क्या इस तरह से उलटी सीधी सुनाना भला लगता है ?

स्वामी—यह तो सच है। दुलहिन का उस तरह से कहना बहुत बुरा है। सास एक काम कर रही है, उसके ऊपर बहू को नहीं बोलना चाहिए था। और सास ने ऐसा बुरा काम ही क्या किया है? बेटी अपनी ही सन्तान है, प्यार से उसे घर की कोई चीज़ दे ही डाली तो बहू को सास पर नाराज होने का अधिकार नहीं है। इससे तो बहू का बिलकुल ओछापन ही जाना जाता है।

स्त्री—और मैं सास से भी कहती हूँ कि जब अपनी पतोहू से और तुम से बहुत मेल नहीं है, तब उससे पहले पूछ ही क्यों न ली? कोई चीज़ दे ही दोगी तो उससे तुम्हारी बेटी का दुःख नहीं टल जायगा, तब भला जन्म भर के लिये बहू और बेटी में लड़ाई क्यों करवा दी। आगे सोच कर भी तो काम करना चाहिए।

स्वामी—और भी देखो। कभी काम पड़ जाय और बहू अपने भाई की उचित सहायता करने लगे तो सास को तब बहुत बुरा लगेगा। वह घर घर कहती फिरेगी कि बहू ने घर की सारी दौलत लुटा डाली।

स्त्री—सहायता उचित नहीं कभी कभी बहुत अनुचित भी हुआ करती है। बहिन को देते हुए जी दुःखता है, पर स्त्री के कहने पर साले को देते बुरा नहीं लगता। ऐसे लोगों की निन्दा न होगी तो और किसकी होगी? पर सास को यह नहीं चाहिए कि घर घर इस बात को कहती फिरे। घर की बात बाहर वालों को क्यों जानने देवे? चार बासन एक जगह रहने से खनखनाया ही करते हैं। दस पाँच के घर

में कभी कभी अनबन भी हो जाया करती है। पर जो अपने घर का भेद बाहर कहती फिरती है उसे मैं तो कभी अच्छी नहीं कह सकती।

स्वामी—बहू के ऐब बखानने के लिये सास के तो हजार मुख हो जाया करते हैं।

स्त्री—मैं मानती हूँ कि यह बहुत बुरी बात है। बहू का कुछ ऐब देख भी पड़े तो उसे सास आप ही समझा दिया करे। और से तो क्या बेटे से भी वह बात न कहनी चाहिए। बहू की निन्दा से किसकी निन्दा होती है? बेटे को इस बात से सुख नहीं मिलता, बहू का भी और अच्छा काम करने के लिये जी नहीं चाहता। एक बार बुरा नाम निकल जावे तो वह फिर नहीं अच्छा होता। काम करके बड़ाई न मिले तो काम में फिर जी काहे को लगेगा? बहुएँ इतनी समझ ही नहीं रखतीं।

स्वामी—निन्दा बहुधा आपही फैल जाती है। बहुएँ समझा करती हैं कि सास ही ने मेरा नाम निकाल रक्खा है। उनका ऐसा समझाना भी अनुचित है।

स्त्री—अब तक तुम दोषों को बताते रहे हो, मैं उनका उत्तर देती रही हूँ। अब मैं दोषों को बताऊँ, तुम उनका उत्तर दो। मैं कहती हूँ कि सास या ननद विधवा हुई तो बहुएँ उसे पूछती तक नहीं। वे समझती हैं कि यह घर की एक जञ्जाल है। मेरी भौजाइयाँ मेरी माँ को न जाने क्या समझती हैं सो कहा नहीं जाता।

स्वामी—इस बात को मैं सच नहीं मान सकता। जिस सास ही से सब कुछ है, जो स्वामी की माता है, भला बहू कभी उसका अनादर कर सकती है? पर हाँ, सास इस बात का झूठ मूठ सन्देह करके मन में दुःख पाया करे तो कोई क्या कर सकता है? यह उसके मन की कल्पना है, सच्ची बात नहीं हो सकती।

स्त्री—मन के दोष से भी ऐसा हो सकता है; पर कहीं कहीं वर्त्ताव में सचमुच ऐसा ही देखा जाता है। और मन की बात कही, सो तो बहुओं में भी कुछ कम नहीं है। सास ने एक मतलब से बात कही, बहू ने झट से उसका मतलब पलट कर कुछ का कुछ समझ लिया। उसी दम यह बात खुल जावे तो झगड़ा तै हो जावे। पर ऐसा नहीं होता। बरसों पीछे किसी दिन लड़ते लड़ते बहू उस बात को कह डालेगी।

स्वामी—मन का दोष सास ही में ज्यादा रहा करता है। बहू ने आज ऐसा किया, बहू ने आज मेरा अपमान किया, बहू ने आज मेरी बेटी का आदर नहीं किया, बेटी ने बच्चे को प्यार नहीं किया, बस ऐसी ऐसी बातों ही के पीछे सास आठों पहर लगी रहती है।

स्त्री—जो ऐसा ही होवे तो यह सास का दोष है। पर बहुएँ एक और भी बहुत अनुचित काम किया करती हैं। क्या स्वामी के पास सास ससुर की निन्दा करना अच्छा है? सो भी जो सच्ची निन्दा हो! झूठ मूठ बातें बना कर निन्दा करना अच्छा नहीं है।

स्वामी—इसमें ज्यादा दोष है उस महापापी का जो स्त्री के मुख से माता पिता की निन्दा सुना करता है—उस जोरू के गुलाम का जो अपनी औरत को ऐसी ओछी बातें कहने का बढ़ावा देता है। इस बात में बहुओं का उतना ऐब नहीं है। बहुओं का सास को अपना हितू न समझना अच्छा न होने पर भी बिलकुल असम्भव भी नहीं है; पर जो बेटा स्त्री के मुख से माता की निन्दा सुन सकता है वह—मैं और क्या कहूँ—वह नरक का कीड़ा है।

स्त्री—और ऐसी भी बहुत सी बहुएँ होती हैं जो अपने शरीर से परिश्रम करना चाहती ही नहीं, वे कहती हैं कि यह दासी टहलनियों का काम है। बुढ़िया सास दिन रात धंधा करती करती मर रही है, और बहू जी दर्पण में अपना मुख देख देख कर ही दिन बिता रही हैं। यह किसका दोष है?

स्वामी—ऐसी स्त्री कोई होवे तो उसका नाम लेना भी मैं पाप समझता हूँ। पर वह एक बात को भूल जाती है। कोई दिन ऐसा भी आवेगा जब उसको भी सास बनना पड़ेगा। उस समय उसकी बहू भी उसके साथ ऐसा ही आचरण करने लगे तब?

स्त्री—उसकी भी बहुएँ जब आवेंगी, मान लिया कि वे उसको कनैठी देंगी। पर क्या यह बात अच्छी है?

स्वामी—अच्छी बात! इससे बढ़ कर ईश्वर के नियमों से विरुद्ध—अस्वाभाविक—काम और क्या हो सकता है? बुढ़िया माँ रसोई बना कर खिलाया करे, और पुत्र महाशय स्त्री के चरण कमलों की सेवा में लगे रह कर उस भोजन को पाया करें—धिक्कार है ऐसी बुद्धि को। और बहू भी नहीं

सोचती कि समय के फेर से उसे भी कभी सास बनना पड़ेगा। रहने भी दो, और ज्यादा सवाल जवाब की ज़रूरत नहीं है। आज कचहरी बरख़ास्त !

स्त्री—योँ ही सही; पर अब बताओ, जीता कौन ?

स्वामी—तुम।

स्त्री—नहीं, तुम !

स्वामी—वाह ! अच्छी कही—

स्त्री—क्यों, मैंने कुछ बुरा कहा है? तुम बहुओं के वकील बने हो। जो तुम जीते तो बहुएँ जीत गईं; और मैं भी बहू हूँ, फिर क्या मेरी जीत नहीं हुई ?

स्वामी—और तुम्हारी जीत हुई तो सासों की जीत हुई; तुम्हारी सास मेरी माँ हैं, क्या उनकी जीत से मेरी जीत नहीं हुई ?

स्त्री – तब दोनों जीत गए !

स्वामी—बात तो सच है ! अकेली सास का भी दोष नहीं है, न अकेली बहुओं ही का। दोष दोनो का है। सास भी कुछ हुकूमत करना चाहती हैं, और बहुएँ भी मनमानी घर जानी का हिसाब पसन्द करती हैं। सास समझती है कि बहू मेरी है, बहू समझती है मैं अपने पति की हूँ।

स्त्री—सासों में एक दोष और भी देखा जाता है। जिसके दो तीन बहुएँ होती हैं, वह उनमें से किसी एक को ज्यादा चाहा करती है।

स्वामी – यह सास का दोष नहीं है। आपसे आप ऐसा हो जाता है।

स्त्री—यह तो झूठ बात है। तुमही ने एक दिन मुझसे कहा था, जो कोई चाहे तो प्यार, नेह या प्रीति को अपने वश में कर सकता है। जो चाहे तो जिस तिसे के साथ प्रीति हो सकती है और जो चाहे तो प्रीति के पात्र को भूल कर भी रहा जा सकता है। इस बात में हमलोगों को पूरी स्वाधीनता है, तब फिर ऐसी बात क्यों कहते हो ?

स्वामी—मैं उस बात को नहीं कह रहा था। मैं कहता था कि सबको एक सा देखना बड़ा कठिन काम है।

स्त्री—पर सबके साथ एक सा वर्त्ताव रखना कुछ उतना कठिन नहीं है।

स्वामी—तब क्या छल का शरण लेना चाहिए ? मेरा मन उसको ज्यादा चाहता है, मैं उसको ज्यादा प्यार करूँगा, इसमें क्या बुराई है ?

स्त्री—पहले "मन मेरा उसको ज्यादा चाहता है" इस बात का कुछ मतलब नहीं है। जी चाहे तो इस बात का नहीं भी कर सकते हो। दूसरी बात, क्या प्यार के खातिर से अपने कर्त्तव्य को भूलना होगा ? प्यार को मन ही में रहने दो। क्या किसी बात को मन में रख लेने ही का नाम छल है ?

स्वामी—देखो, आज तुम्हारी बातों को सुन कर मुझको कितना आनन्द मिल रहा है सो मैं कह नहीं सकता। तुमने विद्या सीख कर पत्र लिखना ही नहीं सीखा है, तुमने अपनी बुद्धि को भी बहुत उन्नति दी है। सचमुच, सब बहुओं पर सास की दृष्टि एक सी न होवे तो उन सबों में द्वेष पैदा हो कर लड़ाई की जड़ जमने लगती है। यह बात अकेली सास

ही के लिये नहीं है। अकेली सास ही नहीं, घर में कोई भी ऐसी रहे जो एक बहू से दूसरी को ज्यादा चाहा करती हो तो वह भी लड़ाई की जड़ जमाती है। इसीलिये दामाद के घर सास का रहना शास्त्रों में मना है। और बहुओं ही के लिये यह बात सत्य नहीं है, भाइयों के लिये भी यही बात ठीक पाई जाती है। एक भाई को कुछ अनुचित आदर वा प्रशंसा मिले तो कभी कभी दूसरे के मन को दुःख पहुँचता है। इस दुःख से कभी कभी भाइओं में विरोध हो जाता है। बराबरी के ज्ञान का सब ठौर में रहना उचित होता है। बहुओं में आपस में जो लड़ाई हो जाती है उसका भी सबब भेद का ज्ञान ही है। वह छोटी है, मैं बड़ी हूँ, उसका स्वामी आलसी है, मेरा स्वामी कमासुत है, बस इसी तरह के भेदों का ज्ञान कभी कभी घर बिगाड़ने का असली कारण हुआ करता है। तुम आप समझदार हो, तुमको अधिक और क्या बताऊँ। तुमको अच्छा ज्ञान आ गया है। अब मैं अपना परिश्रम सफल समझता हूँ। भगवान करे कि दूसरी स्त्रियाँ भी तुम्हारी सी ज्ञानवती हो जावें।

गृहिणी—गृहलक्ष्मी

स्वामी—रो क्यों रही हो? किसकी सास बराबर जीती रहती है? अब तुम छोटी सी नहीं हो; माता का भी बहुत उम्र पाकर स्वर्गवास हुआ है। फिर किस लिये इतना रंज करती हो? अब रो रो कर दिन बिताने से नहीं चलेगा। गृहस्थी का सारा बोझा अब तुम्हारे ही ऊपर है—अब तुम मालकिन हो, अपने कर्त्तव्यों को तो जानती हो न?

स्त्री—नहीं, झूठ मूठ शोक करके और क्या होगा? खैर, मैं नहीं रोऊँगी। क्या करूँ, जी को बहुत समझती हूँ पर उनकी याद नहीं भूलती। अब तक मैं बड़ी निश्चिन्त रहती थी, किसी बात के लिये सोचना नहीं पड़ता था। वह मालकिन थीं, उनकी आज्ञा भर मैं माना करती थी, कभी किसी को आज्ञा नहीं देनी पड़ती थी। बिगड़ने बनने का कुछ भी डर नहीं था। मैं सोच रही हूँ कि मुझसे यह सब काम कैसे निभेगा।

स्वामी—मालिक बनना कुछ सहज बात नहीं है, पर सोचने से अब क्या होगा? जब यह बोझा तुमको ढोना ही है तब सोच लो कि तुममें उसकी शक्ति भी है। अपनी शक्ति पर विश्वास न रहे तो कोई काम ठीक ठीक नहीं होता। अब तुमको सोचना चाहिए कि मालकिन का कठिन काम तुम्हारी शक्ति से बाहर नहीं है। इसके लिये तुम्हारी शिक्षा कच्ची रह गई होवे तो उसे पूरी कर लेने का यत्न करो। साहस के साथ लड़ाई के मैदान में खड़ी हो जाओ। निभेगा कैसे नहीं? इतनी स्त्रियों से निभ सकता है और तुम्हारे निभाए न निभेगा? अच्छी शिक्षा, परिश्रम और साहस हों तो कौन सा काम नहीं निभ सकता?

स्त्री—सो तो सच है, पर तब भी कुछ डर सा लग रहा है। और इस बात की शिक्षा ही मुझको क्या मिली है? तुमने भी तो कुछ नहीं बताया है।

स्वामी—क्या नहीं बताया है? सभी कुछ तो मैं बता चुका हूँ। और मैंने चाहे कोई बात न भी बताई हो, अम्मा को तो तुमने काम करते देखा ही करती थीं। देख कर सीखने से बढ़ कर और कौनसी शिक्षा होती है? बहुत देख सुन कर जो ज्ञान मिलता है उसके सामने दूसरा ज्ञान नहीं खड़ा हो सकता।

स्त्री—हाँ, हाँ, कह लो। पर तब तो एक पल भर के लिये भी मैंने नहीं सोचा था कि इतना भारी बोझा मेरे ऊपर आ पड़ेगा। मैं पेड़ के नीचे रहती थी, छाया ही का सुख भोगा करती थी; कौन जानता था कि वह पेड़ सूख जायगा, वह छाया मेरे भाग्य से मुझे और न मिलेगी?

स्वामी—भविष्यत के लिये लोग ऐसे ही अन्धे हो जाया करते हैं। जो कुछ हो गया है उसके लिये और कहना ही क्या है। पर अब आगे क्या होना है सो भी सोचा करो। और मालिकिन बनने के लिये क्या क्या गुण होने चाहिएँ, जहाँ तक मुझे मालूम है, मैं तुमसे कहता हूँ। ध्यान देकर सुनो।

घर ही नारियों का कार्य-क्षेत्र है। यों देखने से यह खेत चाहे बहुत छोटा सा मालूम पड़ता हो—इसके काम बहुत साधारण जान पड़ते हो, पर ध्यान से देखा जावे तो मालूम हो जावेगा कि यह छोटा या संकीर्ण खेत नहीं है—इसके कार्य साधारण या सहज नहीं हैं। गृहस्थ के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चारों अनमोल फल इसी खेत में फलते हैं। इस गृह के सम्हालने के अधिकार जिस स्त्री के हाथ में सौंपे जाते हैं उसीका

नाम गृहिणी है। इसलिये इसके कहने की आवश्यकता नहीं है कि गृह का सारा सुख गृहिणी के ही हाथों में रहता है। जिस भाँति राजा के अच्छे शासन और दया-दृष्टि से प्रजा को उन्नति सुदृष्टि और सुख मिलते हैं, उसी तरह से गृहिणी के शासन और के गुण से गृहस्थों को भी उन्नति और सुख मिला करते हैं। इससे गृहिणी को बड़ी सावधानी से काम करना चाहिए।

आज तक मैंने जितने गुणों की बातें कहीं हैं, अच्छी गृहिणी में वे सब गुण रहने चाहिएँ। उनमें से एक के भी न रहने से काम नहीं चलता। पर अकेले गुणों के होने से भी क्या—सुगृहिणी को और भी बहुत सी बातों की शिक्षा मिलनी चाहिए। उनमें से कई को मैं यहाँ पर कहता हूँ। तुमको पहले ही से मालूम है कि नाम बता बता कर कर्त्तव्यों को कहना मेरी रीति नहीं है। इस तरह से उनको बतलाना सम्भव भी नहीं है। कर्त्तव्यों का सूची पत्र बनाने से भी उनका अन्त नहीं हो सकता। ऐसी दशा में उनके कई भाग बना कर उन विषयों का कुछ साधारण ज्ञान दिला देने ही से बहुत कुछ मतलब निकल आवेगा। इसलिये मोटी तरह से मैं तुमसे कई विषयों को कहता हूँ—

१—आमदनी और खर्च—

गृहिणी मात्र को अपने परिवार के धन की दशा मालूम रहनी चाहिए। जिस भाँति बाहर घर के मालिक को सब तरह की आमदनी और उसीके अनुसार खर्च का ज्ञान रहना उचित है, उसी भाँति घर के भीतर गृहिणी को भी आय और व्यय का अन्दाज मालूम रहना चाहिए, नहीं तो गृहस्थी के काम काज नियम से ठीक ठीक नहीं चल सकते। मेरी आम-

दनी कितनी है, उसकी कैसी दशा है, वह बराबर बनी रहेगी या थोड़े ही दिनों के लिये है, जो तुम इन बातों को न जानोगी तो गृहस्थी कैसे सम्हालोगी? आय का हाल अच्छी तरह न जानोगी तो व्यय किस हिसाब से करोगी? जो इस बात का ज्ञान तुमको न रहेगा तो हो न हो तुम बेहिसाब ख़र्च करने लगोगी, या किसी अनुचित व्यय करने के लिये तुम्हारे मन में भारी आकांक्षा होने लगेगी। किसी तरह से तुमको सन्तोष न होगा। मुझे मालूम है, अब भी बहुत से घरों के मालिक अपनी घरवालियों को इस विषय में कुछ नहीं जानने देते। वे समझते हैं कि जब ख़र्च हमारे ही हाथ से होगा तो घर-वाली को कहने से क्या फ़ायदा है? ऐसा करना बड़ी भूल की बात है। असली आमदनी की दशा मालूम न रहने से घर-वाली की ख़र्च करने की इच्छा कम नहीं हो सकती, इसलिये उनको ख़र्च करने से सन्तोष नहीं होता। क्या ऐसा असन्तोष पैदा करना कभी उचित है? इस बात से अकेली गृहिणी ही को अज्ञान नहीं रहना पड़ता, वरं मालिक को भी समय समय पर बड़ा भारी दुःख उठाना पड़ता है। एक दृष्टान्त सुन लो। गहने और कपड़ों की बात सुना कर मैं तुम सबों की हँसी नहीं करना चाहता। एक दूसरी बहुत साधारण बात कहता हूँ जो बहुधा हुआ करती है। मान लो कि घर में किसीका विवाह होने वाला है। यह कार्य किस रीति से सम्पूर्ण होगा, किस तरह से ख़र्च करना चाहिए, इत्यादि बातें घर के मालिक गृहिणी से ज़रूर कहेंगे। परन्तु गृहिणी उनके धन की दशा नहीं जानती; पड़ौसी के घर जैसा होते देखा है वह अपने यहाँ भी वैसा ही चाहती है। परन्तु मालिक की दशा उतनी

अच्छी नहीं है; गृहिणी को सन्तोष दिलाने के लिये वेहिसाब खर्च कर बैठे, गृहस्थी ऋण के जाल में फँस गई। परन्तु जो मालिक समझदार भी हुए, मालिकनी उधर मुँह फुला कर बैठ गई, पुत्र के विवाह में इतना उत्सव हुआ, पर उसको उससे कुछ सुख न मिला। "हूँ! कहते लाज नहीं लगती! माधोलाल के घर तो ऐसी ऐसी बातें हुईं थीं, और हमारे घर उसका नाम तक नहीं! सब लोग नाम धरावेंगे तो तुम्हारा क्या बिगड़ेगा!" हँसो मत, ऐसी ही ऐसी बातों से बहुत से परिवार दरिद्र हो जाते हैं। परन्तु ऐसे अवसर में गृहिणी अपने धन की सच्ची दशा जानती हो तो वह कभी अपने पति को क़र्ज़ लेने या अनुचित ख़र्च करने के लिये हठ नहीं करेगी। वरं पति की इच्छा वेहिसाब ख़र्च करने की देखेगी तो वह उसको समझावेगी। बहुत से पति हैं जो अपनी स्त्री से भी अपनी दशा छिपाना चाहते हैं। यह भी उनका भ्रम है। इस से कितनी बुराइयाँ होती हैं, नित्य कितने मनुष्यों को हानि उठानी पड़ती है, सो कहा नहीं जाता। इस लिये गृहिणी को सबसे पहले आय व्यय का लेखा समझ लेना चाहिए। अकेले लेखा समझने ही से काम नहीं चलेगा, समझना चाहिए कि आमदनी बराबर बनी रहेगी, या कुछ ही दिनो के लिये है,—वह स्थायी है या अस्थायी—और खर्च भी थोड़े ही दिनो के लिये है या स्थायी है। यह सच बात है कि मैं आज कल बहुत धन कमा रहा हूँ, परन्तु मेरा आय स्थायी न होवे तो चार दिन बाद फिर मैं धन नहीं कमा सकूँगा। शरीर जन्म भर एक सा निरोग नहीं रहता। धन भी सब समय एक सा नहीं मिल सकता। इन बातों को न समझनेवाली घरवाली

की निर्बुद्धिता से बड़े बड़े घर बिगड़ जाते हैं। शास्त्रों में लिखा है कि आय का चौथा भाग बुरे दिनों के लिये संचित रखना चाहिए, चौथा भाग धर्मकार्य में लगाना, और आधे से गृहस्थी का व्यय सम्हालना चाहिए। आज कल ठीक इसी हिसाब से काम नहीं चल सकता। और ख़र्च के लिये विशेष नियमों का बनाना भी आज कल के दिनों में कठिन है। तिस पर भी इसमें सन्देह नहीं कि आय को समझ कर व्यय और संचय करना चाहिए। इस काम के लिये स्त्रियों को कुछ थोड़ा सा अंकगणित यानी हिसाब किताब भी सीखना चाहिए। विद्या तो जितनी सीखी जावे उतनी ही अच्छी है, परन्तु और कुछ न हो सके तो गणित के साधारण नियमों का जानना हर एक गृहिणी का कर्त्तव्य है।

२—शृङ्खला या चतुराई।

मनुष्यों के सुख और उन्नति बहुत करके अच्छे बन्दोवस्त वा सु-शृङ्खला पर निर्भर हैं। गृहस्थी के छोटे से छोटे काम से लेकर बड़े से बड़े काम तक को अच्छी तरह फल-दायी बनाना हो तो उनके करने में अच्छा बन्दोवस्त रहना चाहिए। आज जो लोग पृथिवी भर में सबसे बड़े माने जाते हैं, उनके हर एक काम को ध्यान से देखो, देख पड़ेगा कि उनका काम कैसी अच्छी शृङ्खला से चल रहा है। यह कहना अनुचित न होगा कि सु-शृङ्खला की गाढ़ी प्रीति अंगरेज़ों के स्वभाव ही में भरी हुई है। साधारण गृहस्थी के प्रबन्ध पर उपदेश देते समय मैं इन लोगों की बात क्यों कह रहा हूँ, ऐसा तुम पूछ सकती हो। इसके उत्तर में तुमसे एक मोटी सी बात कहता हूँ। भारी काम के करने के लिये करनेवाले

में जिन जिन गुणों का रहना आवश्यक है, छोटे कामों के लिये भी उसमें उन्हीं गुणों की आवश्यकता होती है। एक बड़े राज्य के सम्हालने के लिये जैसी सु-शृङ्खला का होना चाहिए, एक परिवार की रक्षा के लिये भी गृहिणी को लगभग उसी तरह की सु-शृङ्खला से काम करना पड़ता है। और सच पूछो तो गृह भी एक छोटा सा राज्य है—गृहिणी उसकी रानी है।

कार्य की शृङ्खला से काम करने की शृङ्खला और काम के समय की भी शृङ्खला, इन दोनों को समझना चाहिए। काम जिस भाँति उपयोगी रीति से होना चाहिए, उसी भाँति यदि वह उचित समय में न किया जावे तो मनमाना फल नहीं मिलता। उचित काम के करने का नाम ही सच्चा कार्य्य है। इन कामों की समष्टि ही हमलोगों का जीवन है—इसलिये मनुष्य के जीवन में शृङ्खला से प्रीति होनी कितनी ज़रूरी है, यह बात सहज ही में समझी जा सकती है। किसी स्वाधीन स्वतन्त्र जीवन में भी जब इसका होना इतना ज़रूरी है, तब एक पराधीन गृहिणी के जीवन में उसका कितना अधिक प्रयोजन है इसका बताना कठिन है। पहले पहल क्लेश उठाकर अभ्यास कर लेने से यह गुण मिल सकता है, पीछे एक बार सु-शृङ्खला का अभ्यास हो जाने पर फिर कुछ दुःख क्लेश नहीं उठाना पड़ता। शरीर का स्वास्थ्य कहो, चाहे मन का स्वास्थ्य कहो, जो सु-शृङ्खला-प्रिय है उसको किसी बात में दुःख नहीं उठाना पड़ता, सब काम सहज ही में हो जाते हैं।

स्त्री—स्वास्थ्य के साथ शृङ्खला का क्या सम्बन्ध है?

स्वामी—शारीरिक स्वास्थ्य क्यों बिगड़ जाता है, जानती हो? बहुधा अनुचित समय में बेहिसाब खाना, पीना, सोना आदि से। इन बातों में मनमाना नियमों का तोड़ना ही स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है। जो मनुष्य शृङ्खला पसन्द करता है वह कभी मनमाना काम नहीं करता, नियमों के अधीन रहना ही उसको शृङ्खला है; इसलिये उसका स्वास्थ्य भी नहीं बिगड़ता। और इन्हीं कारणों से वह अपने मानसिक स्वास्थ्य की भी रक्षा कर सकता है। असल में मनमाना आचरण ही शारीरिक और मानसिक दोनों तरह के स्वास्थ्यों का शत्रु है। और शृङ्खला से प्रीति का मतलब मनमाने आचरण से द्वेष रखना है।

स्त्री—मैंने समझ लिया, जीवन के प्रत्येक कार्य में सु-शृङ्खला यानी अच्छे इन्तजाम का होना जरूरी बात है।

स्वामी—ठीक कहती हो, इतनी बात समझ में आ जावे तो फिर किसीसे उपदेश नहीं लेना पड़ता। बस, सार इतना ही है—"घर की चीज़ वस्तु को उचित स्थान में रखना, उचित समय में उचित काम को करना।"

३—ऊपरी प्रबन्ध या देखभाल।

सु-गृहिणी को नित्य एक बार सब बातें देख भाल लेनी चाहिएँ। कहाँ किस बात की जरूरत है, किस ठौर पर कौन सी वस्तु बिगड़ रही है, कहाँ क्या बनानी चाहिए, परिवार के कौन मनुष्य किस तरह से हैं, उनका शारीरिक स्वास्थ्य, उनके मन की शान्ति, उनके ऊपर सौंपे हुए काम किस ढंग से चल रहे हैं, किसको कैसी शिक्षा मिलनी चाहिए, इन सब बातों का देखना भालना गृहिणी का काम है। अकेले

देख भाल ही से पूरा नहीं पड़ता, उससे जो बात हो सके वह उसे आप भी सुधार दिया करे; जो काम उसके मान का नहीं है, जो उसके किए नहीं हो सकता, वह उसे उचित समय में घर के मालिक को जता दिया करे। घर के झगड़ों को मिटाने में गृहिणी जितनी योग्यता रखती है इतनी दूसरा कोई नहीं रखता। सु-गृहिणी की सुदृष्टि रहे तो सब दिन घर में शान्ति रहती है। मल्लाह मजबूत होवे तो आँधी तूफान में भी नाव नहीं डूबती। गृहिणी अपने काम में पक्की होवे तो महा विपत्ति में भी गृहस्थ का मंगल होने लगता है। जिस गृह में गृहिणी नहीं है उस गृह में गृहलक्ष्मी भी नहीं होती।

४—वर्त्ताव या व्यवहार—

साधारण वर्त्ताव की बात तो मैं पहले ही तुमसे कह चुका हूँ। अब गृहिणी के वर्त्ताव की बात कहता हूँ। गृहिणी में कुछ गम्भीरता रहनी चाहिए। उसे चिबिल्ली नहीं होनी चाहिए। परिवार के सब लोग उसका सम्मान करें, उससे डरा भी करें, इस बात पर उसकी दृष्टि रहनी चाहिए। चिबिल्लापन, नाचरंग और खेल कूद से प्रीति, इत्यादि दोषों से गृहिणी को बची रहनी चाहिए। परिवार के सब लोगों पर समदर्शिनी रहकर उसे सभों के साथ उचित वर्त्ताव करना चाहिए। उसका वर्त्ताव ऐसा होना चाहिए जिससे सब लोग सन्तुष्ट रहें और सबों को ज्ञान और शिक्षा मिला करे। गृहिणी परिवार भर की माता के स्वरूप है। माता जिस प्रकार सन्तानों को पालती है शिक्षा देती है, अनुचित काम पर प्रेम भरी बातों से उनको समझाया

करती है, अच्छे कामों में उत्साह बढ़ाती है, गृहिणी भी परिवार भर के सब लोगों के साथ वैसा ही किया करे। जो जिस काम के योग्य है उसे उसी काम में लगाना चाहिए। सबों की बुद्धि, विद्या वा काम करने की योग्यता एक सी नहीं होती; ऐसी दशा में सब पर एक से काम का बोझ लाद देने से सब के साथ समदृष्टि नहीं होती। शारीरिक पीड़ा के सबब जो मनुष्य काम करने से थक जाता है, उससे हलका काम लेना चाहिए। इस बात से दूसरे किसीके मन में द्वेष भाव न होने पावे, इसलिये गृहिणी उसे अच्छी तरह से मानसिक शिक्षा दिया करे। नौकरों से सदा मीठी बात कहे, उनको उचित समय में आराम और इनाम दिया करे, जिससे सब काम करनेवाले सन्तोष से अपना अपना काम किया करें। कोई बीमार हो जावे तो गृहिणी उसकी सेवा ऐसी चतुराई से करे कि उसे देखते ही रोगी अपना रोग हलका समझने लगे; रोगी के बिछौने के पास उसके आते ही रोगी के मन में शान्ति आ जावे। घर में आए हुए मेहमान और अतिथि सदा आनन्द से रह सकें, गृहिणी को इसका ध्यान रखना चाहिए। उन लोगों को खाने पीने सोने में कुछ दुःख न होने पावे, इस बात का प्रबन्ध ही करके निश्चिन्त न हो जावे, वरन् वह आप भी इसकी देख भाल किया करे। इसके कहने की आवश्यकता नहीं है कि गृहिणी को आलस्य से दूर भागना ही उचित है। वह दूसरों पर काम सौंप कर आप उनकी अच्छी तरह देख भाल किया करे, और उचित समय पर काम करने वालों को आप भी सहायता दिया करे।

५—गृहिणी का धैर्य और क्षमा—

गृहिणी के सबसे बड़े गुण धीरज और क्षमा हैं। जो जितनी धीर है, जितनी क्षमाशील है, वह उतनी ही पक्की गृहिणी है। बहुत सी स्त्रियाँ समझा करती हैं कि घर के मालिक मालकिन को खूब रोब से रहना चाहिए; बिना रोब दाब के अधीन लोग उनका उचित सम्मान करना नहीं चाहते। इस बात को तनिक ध्यान देकर सोचना चाहिए। यह सही है कि गृहिणी क्रोधी हो तो सब लोग उससे डरा करते हैं। परन्तु इस तरह से सबको डरा रखने से घर में अशान्ति की सीमा नहीं रहती। मनुष्य नित्य दूसरे के साथ कुछ न कुछ अपराध कर डालता है। जो हर अपराध के लिये उसे दंड मिला करे तब तो संसार में सब जगह दंड और बदला लेने ही के खेल देखने में आया करें। जो स्त्री धीरज के साथ अपराधों को क्षमा करना नहीं जानती उसे आप भी बेचैन रहना पड़ता है और उसकी अधीनता के सब लोगों को भी चैन नहीं मिलता। मैं यह नहीं कहता कि सब अपराध क्षमा ही कर दिए जाया करें। परन्तु बहुधा क्षमा का फल अच्छा ही होता है इसके कहने में कुछ भी सन्देह नहीं है।

क्रोध आते ही मन की वृत्तियां बेकाबू हो जाती हैं। उनके बेकाबू हो जाने पर जो कुछ किया जाता है उससे बुराई ही होने का डर रहता है। जो अधीन लोगों के अपराध से गृहिणी को क्रोध होने लगे तो गृहस्थी को सम्हालेगा कौन? प्रभुताई पाकर बहुधा लोगों को अपने अधीनो पर उसके प्रयोग करने की बड़ी अभिलाषा हुआ करती है। परन्तु गृहिणी

इस अभिलाष को बड़ी सावधानी से रोक रक्खे। जिसमें जितनी अधिक शक्ति होती है उसे उतना ही अधिक क्षमाशील होना चाहिए। जिसमें किसी तरह की शक्ति ही नहीं है, वह चाहे क्षमा न भी करे तो कुछ उपद्रव नहीं हो सकता। परन्तु जिसमें शक्ति है यदि उसमें क्षमा न हो तो शक्ति के बुरे प्रयोग से महा अनर्थ हो जाता है। सु-गृहिणी सदा इस बात की सुध रख कर अपने अधीनों के अपराधों को क्षमा ही किया करे। जो गृहिणी बात बात पर सबको ताड़ना करती है उसके घर में यदि धन का अभाव न भी होवे तो शान्ति का अभाव अवश्य ही होने लगता है। जिस घर में गृहिणी की पीठ पीछे उसके अधीन लोग उसकी निन्दा करते हैं उस गृह की दशा सोचने योग्य है। ऐसे गृह की गृहिणी मानो शत्रुओं से घिरे हुए गृह में कैद होकर रहती है।

दूसरे गुणों की बात तो पहले ही कही जा चुकी है। जिस नारी में ये सब गुण रहते हैं वही भार्य्या है, उसीका नाम गृहिणी है।

जो नारी गृह-कार्य में चतुर है, जिसे सदा सत्य से प्रीति है, जो थोड़ा बोलती है, जो पतिव्रता साध्वी है, जो सदा शरीर और मन को पवित्र रखती है, जो स्वामी का सौभाग्य बढ़ाने में आठों पहर लगी रहती है वही भार्य्या है। जिस पुरुष के पास ऐसी भार्य्या है उसका गृहधाम देवनिवास है। जलाने की शक्ति विहीन जैसे अग्नि है, जैसा प्रकाशहीन सूर्य है, जैसा शोभाहीन चन्द्रमा है, जैसे शक्ति-

हीन जीवन है, आत्माहीन शरीर है, उसी तरह से भार्य्या हीन पुरुष को भी जानो। जिस भाँति दक्षिणाहीन यज्ञ फल नहीं देता, स्वर्ण के बिना सुनार अपना काम नहीं कर सकता, बिना मिट्टी के कुम्हार बर्तन नहीं बना सकता, इसी प्रकार भार्य्या के बिना गृहस्थ भी अपना कार्य नहीं कर सकता। पति के सब सुख भार्य्या के हाथों में हैं। रथियों के लिये जैसा रथ है, गृहस्थ के लिये वैसा ही गृह है। रथ में जैसे सारथी रहता है, गृह में भी उसी तरह भार्य्या होती है। गृह भार्य्या के अधीन है। गृह के रहने ही से मनुष्य गृही नहीं होता; जिसके भार्य्या नहीं है उसका गृह कैसा?

स्त्री—ऐसी भार्य्या कितनी देखने में आती हैं? ऐसा कितनी स्त्रियों से बन पड़ता है?

स्वामी—जिनसे बन पड़ता है वे ही सच्ची गृहिणी हैं—उन्हीं का नाम गृहलक्ष्मी है। "स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।" श्री नाम लक्ष्मी का है।

श्री और स्त्री में भेद ही क्या है? ऐसी गृहलक्ष्मी ही गृह की शोभा है। "न गृहम् गृहमुच्यते, गृहिणी गृहमुच्यते।" जिस गृह में गृहिणी नहीं है, उस गृह में गृहलक्ष्मी नहीं है, वह गृह नहीं है, वन है। और जहाँ गृहलक्ष्मी का वास होता है वह चाहे वन भी हो पर वह स्वर्ग है। जिस दिन ऐसी शान्ति की मूर्त्ति, श्री की स्वरूप, रमणियों को भारतवर्ष के घर घर लक्ष्मी के रूप में हम लोग विराजती हुई देखेंगे, जिस दिन भारतवासी गृहलक्ष्मियों का उचित

सम्मान करना सीखेंगे, उस दिन सचमुच फिर भारत के अच्छे दिन आ जायँगे; पराए अधीन रहते हुए तथा भाँति भाँति के संकटों में पड़े हुए और दारिद्र के दुःख से रोते हुए भी उसी दिन भारत के लिये फिर सुख का सूर्य उगने लगेगा। नहीं तो भारतवर्ष राजनैतिक आन्दोलनों से चाहे जितनी उन्नति पाता रहे अपनी मर्यादा की रक्षा करने में लाख योग्यता पा लेवे, हम उसको सुखी नहीं मानेंगे। घर में जिसके सुख नहीं है, संसार के दुःख ताप से जल भुन कर दम लेने के लिये जिसको ठौर नहीं है, उसको भला सुख कैसा? जिसके गृह में लक्ष्मी नहीं है, उसकी श्री कैसी?

॥ समाप्त ॥

सम्पादक-पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०

उपसम्पादिका-श्रीमती गोपालदेवी

हिन्दी भाषा में स्त्री शिक्षा विषयक सर्वाङ्ग सुन्दरी उच्चश्रेणी को सबसे सस्ती सचित्र मासिक पत्रिका।

इस पत्रिका में केवल स्त्रियों के उपयोगी लेख रहते हैं। आजकल की स्त्रियाँ प्राचीन समय की सुशिक्षिता, सुशीला और पतिव्रता देवियों का अनुकरण करें और यथार्थ में 'गृहलक्ष्मी' कहलाने योग्य बनें यही इसका एक मात्र उद्देश्य है।

इसमें धर्मशास्त्रों के अनुसार पातिव्रत आदि धर्म, उपदेश भरी कविता, शिक्षापूर्ण उपन्यास, नाटक तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्त्रियों के जीवन चरित्र, गृह प्रबन्ध, पाकशास्त्र, स्वास्थ्य-रक्षा, शिशुपालन (किस तरह से पालने से बच्चा हृष्ट पुष्ट और सदाचारी होता है) सीना, पिरोना, तस्वीर खींचना, संगीत कला, देश विदेश की बातें, सायन्स (विज्ञान) के उपयोगी चुटकुले मनोरंजक पहेली आदि स्त्रियों के उपयोगी सभी विषय रहा करते हैं। छोटी छोटी कन्याओं की रुचि विद्या की ओर लगाने के लिये कुछ लेख किन्डर गार्टन सिस्टम (खेल में शिक्षा) के ढंग पर भी रहा करते हैं।

इस पत्रिका में विवाद-ग्रस्त या किसी विशेष पक्ष के लेख नहीं छपते इसीसे यह पत्रिका सनातन धर्मी तथा आर्य्य समाजी दोनों ही की बहू बेटियों के लिये समान भाव से लाभकारी है और इसी से सब ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

इसका आकार पचास पृष्ठ का रहता है। साल भर में ग्राहकों के पास ६०० पृष्ठ की अच्छी खासी पोथी हो जायगी। प्रायः हर महीने चित्र भी रहा करते हैं। इस पर भी लागत के अनुसार वार्षिक मूल्य केवल १॥) (डेढ़ रुपया) रक्खा है।)=॥ आने के टिकट भेज कर नमूना मँगा देखिये॥

मिलने का पताः—श्रीमती गोपाल देवी,
गृहलक्ष्मी कार्य्यालय—प्रयाग।

और लोग क्या कहते हैं?

सर्व्व साधारण के सन्तोष के लिए, हम उन अयाचित और निष्पक्ष समालोचनाओं के कुछ वाक्यों को नीचे उद्धृत करते हैं जो सुयोग्य सम्पादकों ने "गृहलक्ष्मी" की प्रशंसा में लिखे हैं।

भारतमित्र—[१३-८-१०] * * इसके सम्पादन में प्रबन्धक ने कोई कसर शेष नहीं रक्खी है * * हमारे देश में स्त्री-शिक्षा जिस दर्जे पर है गृहलक्ष्मी का साहित्य उस दर्जे के लिये **खूब ही मौज़ूँ** है। * * यह पत्रिका लड़के लड़की और बहू बेटियों में **बड़े आदर की चीज़** होगी। * * टाइटिल के अन्तिम पृष्ठ पर मासिक जन्त्री * * में महीने भर के तिथि त्यौहार छाप दिये जाते हैं। गृहलक्ष्मियों को यह पृष्ठ भी **बड़े काम का** है * *।

हितवार्ता—[४-८-१०] * * इस ढग के जितने पत्र हमारे देखने में आये हैं, उन सब स यह **निस्सन्देह उत्तम** है। इसके लेख विचार पूर्ण, उपयोगी और सरला भाषा में लिख रहते हैं। यह पत्रिका **प्रत्येक आर्य्य नारी को पढ़ना चाहिये** * *।

विहारबन्धु—[१३-७-१०] * * 'गृहलक्ष्मी' **वास्तव में गृहलक्ष्मी** है। उस में **यथा नाम तथा गुण** हैं। जिन विषयों के मनन करने से हमारी भगिनियाँ **आदर्श गृहलक्ष्मी** हो सकती हैं उन्हीं विषयों की गृहलक्ष्मी में चर्चा की जाती है। सचमुच स्त्री शिक्षा सम्बन्धी गृहलक्ष्मी **उच्च मासिक पत्रिका** है * *।

सत्यसनातनधर्म—[१० १०-१०] * * हम कह सकते हैं कि यह पत्रिका अपने ढङ्ग की **अद्वितीय है।** * * **उन अन्य मासिक पत्रों को जो स्त्रियों के हित साधक हैं "गृहलक्ष्मी" अध्यापिका का काम दे सकती है।** * *

सुधानिधि—[श्रावण १९६७] * * इसके **लेख वैज्ञानिक दृष्टि से लिखे जाते** हैं। स्त्री-समाज में **ऐसे आदर्श पत्र की बड़ी आवश्यकता है।**

लक्ष्मी—[मार्च १९१०] * * यह पत्रिका स्त्रियों के लिये **बड़ी हितकर** जान पड़ती है। * *

जासूस—[जून, जुलाई १९१०] * * इसमें स्त्री-शिक्षा योग्य **उपयोगी लेख** छपा करते हैं। सब लोगों को उचित है कि अपने अन्तःपुर में इस मासिक पत्रिका से लाभ उठावें।

भारतोदय—[चैत्र १९६७] * * अब तक स्त्री-शिक्षा विषयक जितनी पत्र पत्रिकाएँ निकली हैं उन **सबसे बढ़ चढ़ कर रहेगी।** इसकी **भाषा मधुर सरस और शुद्ध** है। लेख **सब अच्छे** हैं * * सम्पादक और लेखक **सब योग्य हैं** * *।

ब्राह्मण सर्वस्व--[सितम्बर १९१०] * * लेख शैली, क्रम रचना और भाषा की उत्तमता में हम गृहलक्ष्मी की **मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।** स्त्री-शिक्षा के विषय में **ऐसा उत्तम पत्र अब तक हमारे देखने में नहीं आया।** * *

———